वर्षा और वनस्पति

लेखक
श्री शंकरराव जोशी

प्रोफेसर गोपालस्वरूप भार्गव द्वारा सम्पादित

विज्ञान ग्रन्थमाला

संख्या १८

वर्षा और वनस्पति

लेखक

श्री शङ्करराव जोषी

—※—

प्रकाशक

विज्ञान परिषद, प्रयाग

प्रथमवार] १९८० [मूल्य ।)

विषय सूची

—*—

वर्षा और वनस्पति

१—भारतका भूगोल और आब हवा

हातोंमें रहनेवाले वृद्ध व्यक्तियोंसे सुना जाता है कि दिन-पर दिन खराब ज़माना आता जाता है। ज़मीनकी उपजाऊ शक्ति नष्ट होती जारही है और इन्द्रदेव भी रुष्ट होकर कम पानी बरसाने लगे हैं। इस कलियुगमें लोगोंकी प्रकृति पापकी ओर अधिकाधिक होती जारही है और इसीसे पृथ्वीमाता और इन्द्रदेव इस स्वर्णभूमिसे रुष्ट होगये हैं। हमारे निरक्षर देहाती भाइयोंके यह विचार कितने ही भद्दे और अवैज्ञानिक क्यों न हों; परन्तु उनमें सत्यका एक बड़ा अंश विद्यमान है। वैज्ञानिक कृषि पद्धतिके अभावसे भूमिकी उर्वरा शक्ति दिन पर दिन घटती जारही है और जंगलोंका नाश हो जानेसे पानीका बरसना भी कम होता जारहा है। इस लेखमालामें वनस्पतिकी वृद्धि और जंगलोंकी रक्षासे होनेवाले लाभों और

वर्षा और वनस्पतिके पारस्परिक सम्बन्ध पर विचार किया जायगा। इस विषयको अच्छी तरह-से समझनेके लिए भारतके भूगोलका परिचय होना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। अतएव इस परिच्छेदमें भारतके भूगोलका संक्षेपमें वर्णन किया जायगा।

भूगोल वर्णन

पाठशालाओंमें भारतका भूगोल पढ़ाया जाता है; किन्तु उसकी रचना राजकीय विभागोंके आधार पर की गई है। इस भूगोलके पढ़नेसे भारतके प्रदेशोंकी अच्छी जानकारी प्राप्त हो जाती है; अतएव नदी पर्वत आदिसे सम्बन्ध रखने वाली देशकी प्राकृतिक रचना पर ही यहाँ विचार किया जायगा।

स्थाननिर्देश और व्याप्ति—भारतवर्ष विषुववृत्तसे उत्तरकी ओर उत्तर अक्षांश ८से ३६ तक और पूर्व रेखांश ६६ से ९२ तक व्याप्त है। भारतवर्षकी दक्षिणोत्तर लम्बाई १८०० मीलसे कुछ अधिक और चौड़ाई १५०० मीलके लगभग है।

सीमा—उत्तरमें तिब्बत और भारतवर्षके मध्यमें हिमालयकी पर्वत श्रेणी फैली हुई है। वायव्य और ईशानमें सिंधु नदी और ब्रह्मपुत्रा नदी है। इनसे

आगेकी ओर पर्वत श्रेणियाँ हैं। इस देशका दक्षिण भाग समुद्रसे घिरा हुआ है। इसे ही दक्षिण (Deccan) कहते हैं।

इस प्रकार भारतवर्षके आग्नेय, दक्षिण और नैऋत्य दिशामें समुद्र है। उत्तर और ईशानमें भूमि है। दक्षिण दिशाकी ओरका जल संचय हो हिंद महासागर कहलाता है, जिसमें कई छोटे द्वीप हैं। सीलोन (लंका) को भी भारतवर्षका एक भाग मान सकते हैं।

यह देश तीन भागोंमें विभक्त है। हिमालय पर्वत, उत्तर और दक्षिण भारत, जिसे अधिकतर डेकन (दक्षिण) कहते हैं।

हिमालय पर्वत—यह पर्वत श्रेणी उत्तर हिंदुस्तानके उत्तरमें एक हज़ार मील तक अविच्छिन्न फैली हुई है। समुद्रकी सतहसे इसकी औसत ऊंचाई २१००० फुटके लगभग है। परन्तु इसके कुछ शिखर पाँच साढ़े पाँच मील ऊंचे हैं। ज्यों ज्यों पर्वतकी ऊंचाई बढ़ती गई है त्यों त्यों उस पर की उष्णता भी घटती गई है।

हिमालय पर्वतकी वनस्पतिका वर्णन करनेके लिए रायल महोदय उसको तीन कल्पित भागोंमें विभक्त किया है।

पहला भाग—समुद्रकी सतहसे पाँच हज़ार फुटकी ऊंचाई तक का प्रदेश इस भागमें शामिल किया गया है। नियमानुसार ऊंचाईकी वृद्धिके साथ उष्णता घटती गई है। तथापि इस भू भाग-पर उष्ण कटिबन्धकी वनस्पतिका अभाव नहीं है। क्योंकि सूर्यकी किरणोंके, दक्षिण दिशाकी ओरसे, पड़नेके कारण गरमी अधिक पड़ती है और वर्षा भी ज़्यादा होती है। अतएव इस भूभागमें खूब वनस्पति होती हैं। यहाँ आम और अनन्नास भी होता है। उसी प्रकार शीतकालमें इस भूभागके ऊंचे ऊंचे शिखरों पर समशीतोष्ण और उष्ण देशोंकी वनस्पति साथ साथ उगी हुई देखी जाती हैं। इस भूभाग पर बर्फ कम नज़र आता है।

दूसरा भाग—समुद्रकी सतहसे पाँच हज़ार फुटकी उंचाईसे लगाकर नौ हज़ार फुटकी ऊंचाई तक का भूप्रदेश इस भागमें शामिल किया गया है। यहाँ शीतकालमें सदा बर्फ जमी रहती है। कभी कभी तो बर्फकी मुटाई बहुत ही ज़्यादा हो जाती है। परन्तु वसन्त ऋतुका प्रारंभ होते ही यह पिघलने लगती है। इस भूभागमें भी समशी-तोष्ण देशकी वनस्पति पाई जाती है। परन्तु ऊपर बताये हुए कारणसे उष्ण कटिबंधमें पाई जानेवाली

वनस्पतिका जितने उच्च प्रदेशमें पाया जाना संभव है, उससे अधिक ऊंचाई पर वह पाई जाती है। एवं शीत प्रदेशमें होनेवाली वनस्पति भी इन्हींके पास उगी हुई देखी जाती है। किन्तु उष्ण कटि-बंधकी वनस्पतिकी यहाँ अच्छी बाढ़ नहीं होती। ताड़की जातिके झाड़ों का यहां अभाव ही है। सब वनस्पति यूरोपकी वनस्पतिके समान नज़र आती हैं।

तीसरा या सर्वोच्च भाग—नौ हज़ार फुटकी ऊँचाईसे लगाकर पर्वतके शिखर तकका भूभाग इसमें शामिल है। यहाँ की आब हवा यूरोप और अमेरिकाके उत्तरी भागोंकी आबहवासे मिलती जुलती है और चोटियाँ तो सदा बर्फसे ढकी रहती हैं। मई जूनमें ठंड एक दम घट जाती है और कड़ाकेकी गरमी पड़ने लगती है। अचरज की बात यह होती है कि सूर्य किरण कितने ही प्रखर क्यों न जान पड़ें, पर हवामें की शीतलता बनी ही रहती है और तापमापक यंत्रका पारा शून्य अंशसे कई अंश नीचे बना रहता है। इसका कारण यह है कि सूर्य किरणोंकी सबकी सब गरमी बर्फ पिघलानेमें खर्च हो जाती है। पदार्थ विज्ञान शास्त्रका नियम है कि पदार्थका रूपान्तर

आरंभ होते ही उष्णताका एक बड़ा अंश नष्ट होने लगता है।

हिमालय पर्वतके उत्तरी भागका दृश्य बिलकुल निराला है। तिब्बत देश पठार पर स्थित है। इस पर्वतके उत्तरी भागमें भारतवर्षके वर्षाकालमें वर्षा नहीं होती और बर्फ भी कम गिरती है। उस भागमें वनस्पति भी कम पाई जाती हैं।

हिमालय पर्वतके दोनों छोर से पर्वत मालाएं निकल कर दक्षिणकी ओरको गई हैं। ईशान कोणकी पर्वत श्रेणीको नागापर्वत और पटकुई पर्वतमाला कहते हैं। भारतके वायव्य प्रान्तकी पर्वत माला हिमालयसे निकलकर दक्षिणकी ओर समुद्र तक चली गई है। उन्हें सफेद कोह, सुलेमान पर्वत और हालापर्वत कहते हैं।

उत्तर हिन्दुस्तान—यह विस्तीर्ण मैदान बहुत ही उपजाऊ है। ब्रह्मपुत्रासे लगाकर सिंधु नद तक यह फैला हुआ है। एवं दक्षिणोत्तर हिमालयसे लगाकर दक्षिणके पठार प्रदेश तक यह व्याप्त है। इस मैदानकी लम्बाई लगभग १५०० मील और चौड़ाई अधिकसे अधिक ४०० मील है। हिमालय पर्वत उत्तर भारतकी सीमा है। राजपूतानेके भूभागको छोड़कर शेष सब प्रदेश अनेकों नदी

नालोंसे सींचा जाता है। राजपूताना और मध्य भारतमें कहीं कहीं पर्वत श्रेणियां भी पाई जाती हैं।

दक्खिन—भारतके दक्षिणकी ओरको जो प्राय-द्वीप है वही 'दक्खन' (Deccan) के नामसे पुकारा जाता है। यह द्वीप एक त्रिकोणके समान है। इस त्रिकोणका आधार बंगालकी खाड़ीसे खंबायतकी खाड़ी तक फैली हुई पर्वत श्रेणियाँ हैं। इसे ही विंध्यपर्वत श्रेणी कहते हैं। पश्चिमकी ओरको समुद्रसे समान अन्तर पर सह्याद्रि फैला हुआ है। कहीं कहीं यह समुद्रसे जा मिला है। इस पर्वतके शिखरों पर ताड़, सुपारी, नारियलके समान उष्ण देशोंकी सुन्दर वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। सागके झाड़ भी यहाँ बहुत हैं। मैसूर की सीमा पर इस पर्वतकी एक शाखा पूर्व-पश्चिम को चली गई है। इसे नीलगिरी कहते हैं। यहाँसे केवल एक शाखा कन्या कुमारी तक चली गई है।

पूर्वीघाट बंग के उपसागरके किनारे किनारे दक्षिणकी ओरको चला गया है। यह सह्याद्रि इतना ऊँचा नहीं है। और इसकी अनेक शाखाएँ इधर उधर फैली हुई हैं। इस पार्वतीय प्रदेशके निवासी जंगली हैं और भूमि भी उपजाऊ नहीं है। इन तीनों पर्वतों से घिरा हुआ प्रदेश ही दक्षिणका

पठार है। इस भूभागकी सब नदियाँ पश्चिमके सह्याद्रिसे निकल कर बंगालकी खाड़ीमें गिरती हैं। इस प्रदेशका नैऋत्य भाग गहरी घाटियोंसे व्याप्त है। इसका मध्यभाग सम है । कर्नाटक प्रान्तमें दो पठार हैं-मैसूर और बालाघाट। दक्खिन-के पठारका भूभाग भिन्न भिन्न ऊंचाईपर स्थित है, अतएव वहाँ की आबहवा, फसलें, जमीन आदि भी भिन्न भिन्न हैं।

आबहवा—अब भारतकी आबहवा पर संक्षेपमें विचार कर मुख्य विषयकी ओर झुकेंगे।

भारत विषुव-वृत्तसे उत्तरकी ओर ८° से ३६° अंश तक व्याप्त है। और कर्क वृत्त विषुव वृत्तसे २३½° ऊपर है। अर्थात् भारतका आधा भाग उष्ण कटिबंधमें और आधा समशीतोष्ण कटिबंधमें है।

कर्कवृत्त उष्ण कटिबंध और समशीतोष्ण कटि-बंधके बीचकी सीमा कहा जा सकता है। कर्कवृत्त अहमदाबाद, उज्जैन, बरद्वान और ढाकाके उत्तर से होकर ब्रह्मदेश को जाता है। उत्तरायणके समय भी सूर्य दक्षिणकी ओरको झुका हुआ रहता है। इस वृत्तके दक्षिणमें सूर्य वर्षमें दो बार ठीक सर पर आता है—पहलीबार उत्तरसे दक्षिणकी ओरको जाते हुए और दूसरी बार दक्षिणसे उत्तरको

जाते हुए। निम्नलिखित उदाहरण से यह बात पाठकोंके ध्यानमें चट आ जायगी। कर्कवृत्तके दक्षिणके प्रदेशोंमें उत्तरायणके समयमें घर झाड़ आदिकी छाया कुछ दक्षिणकी ओरको झुकी हुई नज़र आती है और दक्षिणायनमें उत्तरको ओरको। परन्तु कर्कवृत्तसे उत्तरकी ओरके प्रदेशोंमें यह बात नहीं पाई जाती। वहाँ छाया हमेशा उत्तरकी ओरको ही झुकी हुई रहती है।

उष्ण कटिबंधमें तापक्रम औसतन ७३ अंशसे ८२ अंश तक होता है। परन्तु इससे ग्रीष्म कालकी उष्णताका अनुमान नहीं किया जा सकता। ग्रीष्म कालमें उष्णताका मान शीतकालकी शीतके परिमाणसे जितना ही अधिक होगा, वार्षिक तापक्रमका औसत भी उतना ही कम होगा। इसके प्रतिकूल गर्मी और सर्दीके मौसमके तापक्रमोंमें जितना ही कम अन्तर होगा, वार्षिक तापक्रमका औसत उतना ही अधिक होगा। अतएव वार्षिक औसत तापक्रमकी न्यूनताको देखकर यह मान लेना कि ग्रीष्मकालमें उष्णता कम पड़ती होगी भारी भूल है। मान लीजिये कि एक स्थानमें गरमीके दिनोंमें ताप क्रम १००° और शीतकाल में ६० अंश है, तो उस स्थानका औसत तापक्रम ८०° होगा। पर-

न्तु एक दूसरे स्थानका तापक्रम गरमी और ठंढके मौसममें अनुक्रमसे ९० अंश और ८० अंश है, तो औसत तापक्रम ८५° होगा। दूसरे स्थानका औसत तापक्रम ५° अधिक है, परन्तु पहले भूभागमें गरमीके दिनोंमें गरमी ज़्यादा पड़ती है और शीत-कालमें ठंढकी अधिकता रहती है। अतएव किसी स्थानके वार्षिक औसत तापक्रमको देखकर उस स्थानकी सरदी गरमीका अन्दाज़ा कर लेना भ्रम-पूर्ण और मूर्खता पूर्ण होगा।

उत्तर भारतका वार्षिक औसत तापक्रम दक्षिण भारतके वार्षिक औसत तापक्रमसे कम है। तथापि इस भाग पर सूर्यकी किरण अधिक लम्ब रेखामें गिरती हैं, जिससे वहाँ ग्रीष्मकालमें उष्णता अधिक प्रखर होती है। वायव्य दिशाके प्रान्तोंमें तो गरमी बहुत ही ज़्यादा पड़ती है। परन्तु सिंध प्रान्तमें बलुचिस्तानकी सरहद पर जेकोबाबादमें थर्मा-मीटरका पारा कभी कभी १२५° अंश तक पहुँच जाता है। इतनी अधिक गरमी भारतमें अन्यत्र कहीं नहीं पड़ती। इसके बाद पंजाबका नम्बर आता है। उत्तर भारतमें शीत भी अधिक पड़ती है।

दक्षिण भारत, यद्यपि उष्ण कटिबंधमें है तथा-

पि वहाँ गरमी उतनी तेज़ नहीं होती। इसके तीन कारण हैं। पहला कारण तो यह है कि यह प्रदेश पठारपर स्थित है। इसलिए यहाँ सूर्य किरण अधिक प्रखर नहीं होती। दूसरा कारण यह है कि वहाँ मई जूनमें भी सूर्य कर्कवृत्तके लगभग होता है। इसलिए किरणें अधिक लम्ब रेखामें नहीं पड़तीं। तीसरा कारण यह है कि वहाँ जून मासमें ही वर्षा शुरू हो जाती है, जिससे शीतलता फैल जाती है। तथापि शीतकाल सौम्य होनेके कारण वार्षिक उष्णताका औसतमान बढ़ जाता है।

सारांशमें, पहाड़ी प्रदेशका थोड़ा सा भाग छोड़ कर सारे देशमें गरमी ही ज़्यादा पड़ती है। भारतवर्षमें वर्षा नियमित समय पर होती है। साधारणतः वर्षाकाल जूनसे अक्टोबर तक व्याप्त रहता है। वर्षाके पानी पर ही वर्षके शेष भागमें निर्वाह करना पड़ता है।

२—भारतकी स्वाभाविक आवश्यकताएँ

त परिच्छेदमें भारतकी जलवायुका दिग्दर्शन करा चुके हैं। इस परिच्छेदमें भारतकी आवश्यकताओं पर विचार किया जायगा। देशके जलवायुको देखते हुए भारतकी तीन आवश्यकताएं भासित होती हैं; यह हैं शीतलता, वर्षा और जलसंचय। इन तीनों पर भिन्न भिन्न परिच्छेदोंमें विवेचन किया जायगा।

शीतलता

समशीतोष्ण कटिबंध करीब ४३ अंश तक फैला हुआ है। इनमेंसे करीब १२½ अंश भारतके हिस्सेमें आये हैं। और यह अंश उष्ण कटिबंधके पासके हैं। अतएव यहाँकी हवा समशीतोष्ण देश-की हवाके समान नहीं है। यहाँ उष्ण कटिबंधकी अपेक्षा कुछ कम गरमी होती है। इस देशकी वार्षिक औसत गरमी ६२ अंशसे ८२ अंश तक है। गरमी-के दिनोंमें कहीं उष्णता १२५° अंश तक बढ़ जाती है। इतनी अधिक उष्णता एक दम असह्य है।

अतिशय उष्णतासे मनुष्यकी शारीरिक और मानसिक वृद्धिमें रुकावट पहुँचती है। उष्ण जल-वायु वाले देशोंके लोगोंकी उम्र भी कम होती है।

क्योंकि इन देशोंमें मनुष्य को प्रौढ़त्व जल्दी प्राप्त हो जाता है और बुढ़ापा भी जलदी आ घेरता है। उष्ण देशोंकी लड़कियां दस बारह वर्षकी अवस्थामें ही प्रौढत्वको प्राप्त हो जाती हैं और बाल्यावस्थामें शादी करनेकी चाल होने से सन्तति भी कमज़ोर हो जाती है। शीत प्रधान देशोंमें स्त्रियां २० वर्षकी अवस्थामें और पुरुष २२ वर्षकी अवस्थामें प्रौढ़ताको प्राप्त होते हैं। उत्तर भारतमें ठंढ अधिक पड़ती है। इसलिए वहां लड़कियां १५-१६ वर्षकी अवस्था तक प्रौढत्वको प्राप्त नहीं होतीं। परन्तु मद्रासका हाल बिलकुल जुदा है। वहाँ गरमी अधिक पड़ती है, इसलिए लड़कियाँ छोटी अवस्थामें ही प्रौढत्वको प्राप्त हो जाती हैं। मानसिक बाढ़का भी यही हाल है। अफ्रीका खण्डमें से विषुव वृत्त गुजरता है, इस-लिए वहाँ गरमी अधिक पड़ती है। और यही कारण है कि वहाँके लोग बौने, काले और कुरूप हैं। मिश्रके सिवा अन्यत्र सभ्यताके चिन्ह नजर नहीं आते। लोगोंकी मानसिक शक्तिका भी उतना विकास नहीं हुआ है। परन्तु फ्रांस, इङ्गलैंड, जर्मनी, अमेरिका आदि देशोंकी स्थिति बिलकुल निराली है। वहाँके लोग बलवान ऊंचे और

सुन्दर हैं। इन देशोंकी अपनी निजकी सभ्यता है जो ऊंचे दरजेको पहुँच गई है। लोगोंकी मानसिक अवस्थाका भी अच्छा विकास हुआ है। मद्रासके निवासी काले कुछ कुरूप और बौने होते हैं। हर प्रकारकी सभ्यता और मानसिक शक्तिमें वह पिछड़े हुए हैं। परन्तु बंगाल पंजाब आदिकी बात इससे बिलकुल जुदी है। वहां के लोग हट्टे कट्टे और ऊंचे पूरे हैं। अर्वाचीन कालमें सभ्यता और विद्यामें बंगाल भारतके शेष सब प्रान्तोंसे बहुत आगे बढ़ा हुआ है। प्राचीन कालमें अयोध्या, दिल्ली, मथुरा, पाटली पुत्र आदि नगर धन धान्य और विद्या सम्पन्न थे। यह सब नगर उत्तर भारत में ही स्थित हैं। प्राचीनकालमें जितने शक्तिशाली साम्राज्य हो गये हैं, वह सब उत्तर भारतमें ही फैले हुए थे। कमसे कम इन साम्राज्योंके नेता और महाराज उत्तर भारतके ही रहने वाले थे। सारांश में समशीतोष्ण कटिबंध ही रहनेके लिए एक आदर्श प्रदेश है। परन्तु इस कटिबंधका मध्य भाग ही सर्वोत्तम है—शीत कटिबंध या उष्ण कटिबंध की ओरवाला भाग नहीं।

अतिशय ठंढ भी मानव प्राणीके लिए हितकारक नहीं। नार्वे, स्वीडन, लैपलैंड, रूसका

उत्तरी प्रदेश आदि देशोंकी आबहवा बहुत ही ठंढो है। अतएव वहाँके लोग भी बौने और कुरूप हैं। उनकी मानसिक शक्तिका विकास भी उतना अधिक नहीं हुआ है। हिमालय पर्वतके शीत प्रधान प्रदेशोंका भी यही हाल है।

उष्ण जल वायुमें रहनेसे अन्य कई प्रकार की हानियाँ भी होती हैं। उष्ण प्रदेशोंमें शारीरिक और मानसिक परिश्रम ज़्यादा नहीं किया जा सकता। थोड़ी सी मिहनत करनेसे ही सारा शरीर शिथिल हो जाता है। ठंढे देशोंमें अधिक समय तक परिश्रम करनेसे भी थकावट मालूम नहीं होती। जर्मनीके विद्यार्थी प्रति दिन १४-१५ घंटे तक अभ्यास करते हैं।

सारांश यह है कि मानवोन्नतिके लिए न तो अतिशय उष्णता ही हितकारक है और न अतिशय ठंढ ही, और भारतवर्षमें तो उष्णता ज़्यादा है। अतएव यह आवश्यक है कि कोई ऐसा उपाय किया जायजिससे उष्णताका परिमाण घटाया जा सके।

हमारा अनुभव है कि शीतकालमें अन्न-पचन अच्छा होता है और वह रुचिकर भी मालूम होता है। इस ऋतुमें ज़्यादा मेहनत करनेसे भी थकावट नहीं मालूम होती। इसी ऋतुमें पहलवान लोग

कसरत करके शरीर कमाते हैं। शीतकाल में परिश्रम करनेको जी चाहता है और शरीर-शक्ति भी अधिक रहती है। परन्तु गरमीके मौसम का हाल इससे बिलकुल उलटा है। इस मौसममें अन्न रुचिकर नहीं मालूम होता। थोड़ा सा परिश्रम करनेसे सारा शरीर शिथिल हो जाता है और पसीना चूने लगता है। प्यास ज़्यादा लगती है, जिससे भोजन कम खाया जाता है। गरमीके मारे रातको नींद नहीं आती, जिससे दूसरे रोज़ सबेरे काम करनेको उत्साह नहीं रहता। अस्तु।

उपर्युक्त विवेचनको पढ़कर पाठक यह बात भले प्रकार समझ गये होंगे कि हमको शीतलता की कितनी अधिक आवश्यकता है।

वर्षा

क़रीब क़रीब सभी ठंडे देशोंमें बारहों महीने पानी बरसा करता है। परन्तु पूरे सालमें ३०—४० इंचसे अधिक वर्षा नहीं होती। फिर भी उन देशोंमें अकाल की भीति बिलकुल नहीं रहती। किन्तु उष्ण देशोंमें नियमित समय पर नियमित दिनों तक वर्षा होती है। भारतवर्षमें वर्षा-काल लगभग चार महीनों तक रहता है। इसी पानी पर साल भरकी फ़सलें निर्भर करती हैं। यदि वर्षा अच्छी

हुई तो फ़सलें भी ठीक होती हैं। कई देशोंमें फ़सलें वर्षाके पानी पर निर्भर नहीं होतीं। वहाँ तालाबों और नदी-नालेके पानीको नहरों द्वारा दूर दूर तक लेजाकर सिंचाई करके फ़सलें पैदा की जाती हैं। ऐसे देशोंमें वर्षा न होने पर भी अकाल-का भय नहीं रहता। भारतके उन भागोंमें, जहाँ गंगा, यमुना, सिंधु आदिकी नहरोंसे ज़मीन सींची जाती है, वर्षा न होने पर भी सभी प्रकारकी फ़सलें की जा सकती हैं। तथापि देशके अन्य भागोंमें कृषि वर्षा पर ही निर्भर होती है। ऐसे प्रान्तोंमें एक ही साल पानी न बरसे या कम बरसे तो फ़सलें नष्ट हो जाती हैं, और अकाल कराल मुंह बाये सामने आ खड़ा हो जाता है। अकाल पड़ने-के अन्य भी कई कारण हैं; परन्तु उनमें वर्षाका अभाव प्रमुख है। अतएव राजा और प्रजाका यह एक आवश्यक और पवित्र कर्तव्य है कि वह ऐसे साध-नोंकी योजना करें जिनसे वर्षा होती रहे।

जलसंचय

ऊपर लिख आये हैं कि उष्ण देशोंमें नियमित समय पर पानी बरसता है। भारतमें वर्षा तीनसे पाँच मास तक होती रहती है। वर्षके शेष महीनों-में बहुत कम पानी बरसता है। इसी थोड़े समयमें

बरसे हुये पानी पर ही वनस्पतियों और प्राणियों-को गुज़र करनी पड़ती है।

कई प्रदेशोंमें घास और अन्नकी विपुलता होते हुए भी एक मात्र वर्षाकी कमीके कारण लोगोंको अपना घरबार छोड़कर भागना पड़ता है, क्योंकि बिना जलके प्राणियोंका जीना एक दम असंभव है और कुएं तालाबोंमें पानी कम होनेके कारण बहुत सी ज़मीन परती रह जाती है। धान्यका दुष्काल पड़ने पर जहाज़, रेल आदि द्वारा दूसरे देशोंसे अनाज मँगाया जा सकता है; किन्तु पानी नहीं मंगाया जा सकता।

नदियोंमें बाँध बाँध कर एवं तालाबोंमें संचित किये हुए जल पर प्राणियों और वनस्पतियोंका गुज़ारा चल सकता है। सिंचाईकी फसलोंको तो, नदी नालों, कुओं और तालाबोंसे पानी ऊपर उठा कर पानी दिया जा सकता है, किन्तु वह फ़सलें, जो जलाशयोंसे बहुत दूरवाली ज़मीनमें बोई जाती हैं, वर्षाके पानी पर ही निर्भर होती हैं। यदि किसी वर्ष जल न बरसे या कम बरसे, तो ऐसे खेतोंमें एक दाना भी पैदा नहीं हो सकता। और अगर पानी ही नहीं बरसेगा, तो कुएं और नदी नालों तथा तालाबोंमें भी पानी कहाँसे आयेगा। अत-

एव यह अत्यन्त आवश्यक है कि वर्षाके पानीको बहकर समुद्रमें न जाने देना चाहिये। नदी नालों-में बाँध डालकर और तालाब बनाकर जल-संचय करनेकी कोशिश करना चाहिये।

ऊपर भारतकी जिन तीन आवश्यकताओंके बारेमें लिख आये हैं उन्हें प्राप्त करनेमें वनस्पति हमको बहुत ही ज़्यादा सहायता पहुँचाती है। वनस्पति यह काम किस प्रकार करती है, यह बात आगेके परिच्छेदोंमें क्रमशः दिखाई जायगी।

३—शीतलता प्राप्त करनेके साधन

शीतलता प्राप्त करनेके साधनों पर विचार करते ही सबसे पहले हमारी दृष्टि वनस्पति पर पड़ती है। वनस्पतिकी संख्या जितनी ही अधिक होगी, शीतलता भी उतनी ही अधिक उत्पन्न होगी। यहाँ शीतलता शब्दका स्पष्टीकरण कर देना परमावश्यक है। शीतलता शब्दसे उष्णताका पूर्ण अभाव ही समझना चाहिये। हमको अधिकांश उष्णता प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षमें सूर्यसे ही प्राप्त होती है। पदार्थोंके जलने, रासायनिक संयोग और पदार्थोंके चलन वलनसे बहुत कम उष्णता प्राप्त होती है। और यह उष्णता भी तो अप्रत्यक्ष रूपसे सूर्यसे ही प्राप्त होती है। अतएव शीतलता प्राप्त करनेके लिए यह बहुत जरूरी है कि सूर्यकी किरणोंसे पैदा होने वाली उष्णताकी प्रखरता न्यून करनेका यत्न किया जाय। और वनस्पति यह काम भले प्रकार कर सकती है। रंग, रासायनिक व्यापार और वाष्पीभवनकी क्रिया द्वारा ही वनस्पति यह कार्य सम्पन्न

करती है। आगे चलकर इन पर अलग अलग विचार किया जायगा।

रंग

वनस्पतिका रंग हरा-काला होता है। और काला रंग तो उष्णता ग्राहक है। सूर्यकी किरणें सात रंगोंके मिश्रणसे बनी हैं, जिससे उनका रंग सफेद होगया है।

प्रकाशकी किरणें पहले किसी पदार्थ पर पड़ती हैं और वहाँसे उनका परावर्तन होकर वह देखनेवालेकी आंखों पर आकर गिरती हैं इसीसे उसे पदार्थका ज्ञान होता है। यह एक अनुभव सिद्ध बात है कि जब तक किसी पदार्थ पर प्रकाश नहीं पड़ता, उसके अस्तित्वका ज्ञान हो ही नहीं सकता।

अब यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि पदार्थ पर तो सफेद किरणें पड़ती हैं, तब पदार्थ भिन्न भिन्न रंगके क्यों दिखाई देते हैं? ऊपर लिखा गया है कि किरणें सात रंगके मिश्रणसे बनी हैं। इसीसे वह श्वेत रंगकी नज़र आती हैं। प्रत्येक पदार्थमें सूर्य किरणोंमेंके सातों रंगोंमेंसे किसी एक या अधिक रंगकी किरणोंको ग्रहण कर शेष रंगकी किरणोंका परावर्तन करनेका धर्म विद्यमान

करता है। लाल रंगके पदार्थ लाल रंगकी किरण-के सिवा शेष सब रंगकी किरणोंको ग्रहण कर लेता है। इन्हीं लाल रंगवाली किरणोंका परावर्तन होता है, जिससे वह पदार्थ हमको लाल रंग-का नज़र आता है। अतएव यह कह सकते हैं कि किसी विशेष रंगकी किरणोंका परावर्तन करनेका धर्म ही उस पदार्थका रंग है। अंधेरेमें हमको पदार्थ नज़र नहीं आते; इससे यह बात साफ मालूम हो जाती है कि अंधेरेमें पदार्थका रंग नहीं रहता। जो पदार्थ सातों रंगकी किरणोंका परावर्तन करता है वह सफेद रंगका माना जाता है। परन्तु वह असलमें सातों रंगोंके संकरसे बना होता है। जो पदार्थ सभी रंगकी किरणोंको ग्रहण कर लेता है वह काला कहाता है। काला एक रंग माना जाता है तथापि वैज्ञानिक भाषामें वह विशेष प्रकारका रंग नहीं माना जा सकता—वह तो रंगोंके अभावका निदर्शक है। सभी रंगोंकी किरणोंको ग्रहण करनेका धर्म होनेके कारण काला पदार्थ उष्णता-ग्राहक होता है। काले रंगके इस धर्मका अनुभव पाठकोंको अवश्य ही होगा।

चित्र १ में एक यंत्र दिखाया गया है। अ यंत्र-की सुईका अग्रभाग है। और ब ब इस सुईके अग्र-

भाग चित्र १ पर घूमने वाला एक अर्ध गोलाकार तार है। इस तारके दोनों सिरों पर ड क दो लोहेके छोटे छोटे टुकड़े लगे हैं। इन पतरोंके टुकड़ेके एक बाजूपर काला रंग पोता गया है और दूसरे बाजू पर सफेद रंग। इस यंत्रको एक कांचकी हांडीमें बन्दकर हांडीको वायुशून्य कर देना चाहिये। ऐसा करनेसे यंत्र हवाके प्रभावसे बचा रहेगा और किरणें भीतर प्रवेश करती रहेंगी। इस यंत्रको अंधेरे स्थानमें रखनेसे तो तार घूमेगा नहीं, परन्तु जरासे प्रकाशमें लातेही वह घूमने लगेगा। इसका कारण यह है कि सूर्यकी किरणें इस यंत्रके पतरोंके टुकड़ों पर पड़ती हैं। पतरोंका काला रंग किरणोंको ग्रहण कर लेता है, परन्तु दूसरी बाजू परका सफेद रंग किरणोंका ज़ोरसे परावर्तन करता है। इसका प्रत्याघात होनेसे तार घूमने लगता है। यदि काला रंग न पोता जायगा, तो तार कदापि न घूमेगा।

हमारा रोज़का अनुभव भी यही बात सिद्ध करता है कि काला रंग उष्णता गाहक है। काले कपड़ेके छातेको लगाकर बाहर जानेसे कपड़ा जलदी गरम हो जाता है, जिससे छाता लगाने-वालेको भी गरमी मालूम होने लगती है। और यही कारण है कि गरमीमें अकसर लोग छाते पर

सफेद कपड़ा लगा देते हैं। शरीरकी गरमी बनाये रखनेके लिए ही लोग शीतकालमें काले कपड़े पहनते हैं। धूपमें रखे हुए सफेद पदार्थकी ओर देखनेसे आंखें चौंधिया जाती हैं; परन्तु काले या काली झाईं युत पदार्थको देखनेसे आंखोंको किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता। गरमीके दिनोंमें दूबसे भरी पूरी लान या वनस्पतिकी हरियाली कितनी सुखद और आल्हाद-कारक मालूम होती है। ऊपरके विवेचनसे यह बात भले प्रकार सिद्ध हो जाती है कि वनस्पतिके पत्तोंका हरा रंग उष्णता ग्राहक है, जिससे शीतलता उत्पन्न होती है।

रासायनिक व्यापार

रसायन शास्त्रका नियम है कि रासायनिक रीतिसे दो पदार्थोंका संयोग प्रारंभ होते ही उष्णता उत्पन्न होती है। हमारे रोज़के व्यवहारमें यह बात अनेकों बार देखी जाती है। कलीके चूनेमें पानी डालते ही एक प्रकारका रासायनिक संयोग प्रारंभ हो जाता है, जिससे उष्णता उत्पन्न होती है। लकड़ी तेल आदि जलानेसे उत्पन्न होनेवाली उष्णता भी रासायनिक व्यापारसे ही उत्पन्न होती है। लकड़ी और तलमेंके हायड्रोजन और कर्बनका वातावरणके आक्सिजनसे रासायनिक संयोग

वर्षा और वनस्पति
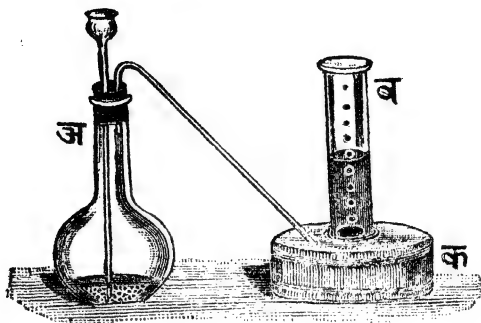
चित्र २ (देखिये पृष्ठ २७)
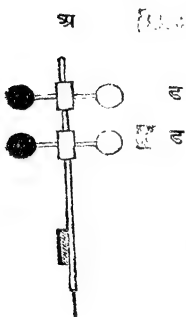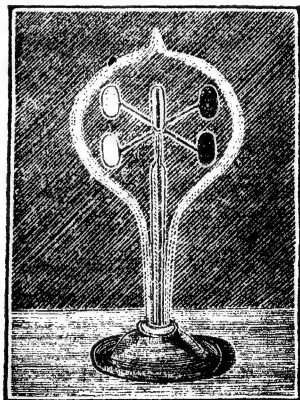
चित्र १ (क) चित्र—१ (ख)

(देखिये पृष्ठ २२)

होता है जिससे पानी और कार्बोनिक एसिड गैसकी उत्पत्ति होती है और इसी व्यापारसे उष्णता पैदा होती है। रासायनिक व्यापारके कारण ही गोबर-के खादके ढेरमें भी गरमी पैदा होती है। दूधमें जामन डालनेसे रासायनिक व्यापार शुरू होता है जिससे बर्तन गरम हो जाता है। अस्तु।

पदार्थोंका विश्लेषण या पृथक्करण करनेके लिए उष्णता पहुँचानी पड़ती है। चूनेके घोलमेंसे चूना और पानी अलग करनेके लिए उसे गरमी पहुँचानी पड़ती है। स्थानाभावके कारण इस सम्बन्धमें अधिक नहीं लिखा जा सकता। जिस स्थानमें रासायनिक विश्लेषण आप ही आप होता रहता है, वहां आस पासकी उष्णता उक्त व्यापारमें खर्च हो जाती है और उष्णताका अभाव ही शीतलता है।

अब यह देखेंगे कि वृक्ष किस प्रकार विश्लेषण द्वारा शीतलता उत्पन्न करते हैं। वनस्पतिका मुख्य शरीर काष्ठ है। काष्ठमें २५ प्रतिशत कर्बन रहता है और शेष भाग नत्राजन, पानी, पौटैश आदिका रहता है। वनस्पति कर्बनके सिवा अन्य सब खाद्य पदार्थ जड़ों द्वारा ज़मीनमेंसे ग्रहण करती है। कर्बन उसे वातावरणमेंसे प्राप्त होता है। वाता-वरणमें प्रतिसहस्र ४ भाग कार्बानिक एसिड गैस

रहती है। जिस स्थानपर प्राणी अधिक रहते हैं या ज्वलन क्रिया जारी रहती है, वहां इसका परिमाण भी अधिक रहता है। क्योंकि पदार्थोंके जलने और प्राणियोंकी श्वासोच्छ्वासकी क्रियासे यह पदार्थ अधिक परिमाणमें निर्माण होता रहता है। वातावरणमें आक्सिजन और कार्बानिक ऐसिड गैस रहती है। वनस्पति सूर्यकी किरणोंकी सहायतासे वातावरणमेंसे कर्बन ग्रहण करती रहती हैं। यह क्रिया दिनमें हमेशा जारी रहती है।

वनस्पतिकी इस क्रियाको समझनेके लिए एक छोटा सा प्रयोग यहां दिया जाता है। यह प्रयोग बहुत ही सरल है।

एक चौड़े मुँहकी बोतलमें पानी और कुछ चाक मट्टीके टुकड़े डालकर उसके मँहपर काग लगा दो। इस कागमें दो छेद बना देने चाहियें। एक छेदमें कीप (funnel) बिठा दी जाय। इस कीपका दूसरा सिरा बोतलमेंके पानी तक पहुँच जाना चाहिये और दूसरे छेदमें एक रबरकी नली लगा दी जाय। एक दूसरे चौड़े और छिछले बरतनमें पानी भरलो चित्र २ और तब उसमें एक चौड़े मँहकी शीशी पानीसे भरकर औंधी कर दो। इस

शीशीका मुँह पानीमें रख कर ही उसे औंधी कर देनी चाहिये। रबरकी नलीका दूसरा सिरा इस औंधी शीशीमें लगा दिया जाय। कीप द्वारा अ शीशी में नमक का तेज़ाब डालनेसे एक प्रकारकी गैस उत्पन्न होगी जो रबरकी नलीमें होकर ब शीशीमें चली जायगी और पानीमें बुलबुले उठने लगेंगे। इस प्रकार कुछ गैस ब शीशीमें चली जानेपर रबर-की नली हटा ली जाय और हरे पत्ते लाकर उसमें रख दिये जायँ। इसके बाद क बरतन व शीशा सहित ज्योंका त्यों धीरेसे उठाकर धूपमें रख दिया जाय। किरणोंकी सहायतासे पत्ते कर्बन ग्रहण करने लगेंगे जिससे ब शीशीके पानीमें बुलबुले उठना शुरू हो जायंगे। यह बुलबुले आक्सिजनके हैं।

अब यहां यह प्रश्न उपस्थित होता है कि ब शीशीमें ओषजन इकट्ठा हुई थी या अन्य कोई गैस? यह बात जाननेके लिए बरतनके पानीमें ही शीशीको कुछ ऊपर उठा कर उसमें एक मज़बूत काग लगा दो। और तब उसे बाहर निकाल लो। शीशीको सीधी जमीनपर रख कर एक जलती हुई लकड़ी काग हटाकर शीशीके अंदर डालकर पकड़े रहो। परन्तु स्मरण रहे कि लकड़ी पानीसे न छूने पावे। शीशीमें डालते ही ओषजन गैसके कारण

लकड़ी ज़्यादा तेज़ीसे जलने लगेगी। ओषजन वायुका धर्म है कि उसमें ज्वालाग्राही पदार्थ ज़्यादा तेज़ीसे जलने लगते हैं। यदि क बरतन व शीशी सहित किसी अँधेरे स्थानमें रखा जायगा, तो कर्बन द्विओषिद्का पृथक्करण न होगा। कारण इसके लिए उष्णताकी बहुत ही ज़्यादा ज़रूरत है। प्रकाश-में रहनेपर वनस्पति वातावरणमेंसे उष्णता ग्रहण करती है। और यही कारण है कि वृक्षके नीचे और उसके आस पास हमेशा शीतलता बनी रहती है।*

वाष्पीभवन

अब इस बात पर विचार करना रह गया है कि वनस्पति वाष्पीभवनकी क्रिया द्वारा शीतलता किस प्रकार उत्पन्न करती है। वनस्पति जड़ों द्वारा ज़मीनमेंसे पानी सोखती है। यही पानी तब पत्तोंके रंध्रोंमेंसे होकर भाप बन कर हवामें मिल

* वनस्पति वातावरणमेंसे जितनी उष्णता ग्रहण करती है, वह नष्ट नहीं होने पाती। वह वनस्पतिमें अदृश्य रूपमें वर्तमान रहती है; एवं उसे चाहें तब उत्पन्न भी कर सकते हैं। कोयला या लकड़ी जलानेसे जो उष्णता उत्पन्न होती है, वह वृक्षके पोषणके लिए काष्ट निर्माणमें अदृश्य हुई उष्णता ही है।

जाता है। वाष्पीभवनके लिए भी उष्णताकी जरूरत होती है। पानीको भापके रूपमें बदलनेके लिए उसके नीचे आग जलानी पड़ती है। पानीका बरतन चूल्हे पर रख कर उसके नीचे आग जलानेसे पानी भाप बन कर उड़ने लगता है। उबाल आनेपर यदि पानीमें थर्मामीटर डाल कर उष्णताका परिमाण देखा जाय, तो वह समुद्रकी सतह पर २१२° फा· होगा। एक सेर पानीको उबालनेके लिए जितना ईंधन दरकार होगा उससे पाँच गुनेसे अधिक ईंधन उस पानीकी भाप बनानेके लिए दरकार होता है। उबाल उठने पर पानीमें जितनी उष्णता रहती है, उतनी ही उष्णता पानीके भाप बन कर उड़ जाने तक बनी रहती है। तब यह पाँच गुनी उष्णता जाती कहाँ है? क्या वह नष्ट हो जाती है। पाठकोंको यह बात सदा स्मरण रखनी चाहिये कि पदार्थ तथा शक्ति दोनों अविनाशी हैं—वह कभी नष्ट नहीं होते—एक रूपसे दूसरे रूपमें जरूर बदल जाते हैं। यह पाँच गुनी उष्णता भापमें विद्यमान रहती है; परन्तु हम उसको देख नहीं सकते। परन्तु भापसे उष्णता पुनः उत्पन्न की जा सकती है। किसी बरतनमें पाँच कटोरी पानी लेकर उसमें रबरकी नली द्वारा एक दूसरे बरतन-

से भाप लेकर छोड़ दी जाय। मान लो कि पहले बर-
तनके पानीका ताप क्रम ३२° फा हो अर्थात् वह बर्फके
समान ठंढा है। रबरकी नली द्वारा पानीकी भाप
इस बर्तनमें आकर जलके रूपमें बदल जायगी और
तब धीरे धीरे पानीका ताप क्रम बढ़ने लगेगा
और २१२° फा. तक बढ़ जायगा। २१२° फा· तक
उष्णता बढ़ जाने पर भाप पानी न बन कर पुनः
भापके रूपमें उड़ने लगेगी। यदि दूसरे बरतनका
पानी नापा जायगा, तो वह प्रायः एक कटोरी ज्यादा
उतरेगा। यह एक कटोरी पानी, उस बरतनमेंसे
आई हुई भापके पुनः जल बन जानेसे ही बढ़ा है।
इसी एक कटोरी पानीने पाँच कटोरी पानीकी
उष्णता ३२° फा· से २१२° फा. तक बढ़ाई है।
परन्तु इस भापकी उष्णता भी तो २१२° से ज़्यादा
न थी। अतएव यह सिद्ध हो जाता है कि जितनी
भापसे एक कटोरी जल बना है, उतनी भापमें
पाँच कटोरी पानीको २१२° फा· तक गरम करने
के लिए उष्णता विद्यमान थी। इससे यह बात भले
प्रकार सिद्ध हो जाती है कि जलके वाष्प रूप
धारण करनेमें अतिशय उष्णता अदृश्य हो जाती है।

पानीके वाष्प रूप धारण करना प्रारंभ होते
ही उष्णता अदृश्य होने लगती है अर्थात् शीतलता

उत्पन्न होने लगती है। रोज़के व्यवहारमें यह बात देखी भी जाती है। पानीका यह धर्म है कि हवा कितनी ही ठंडी क्यों न हो, उसके पृष्ट भागसे वाष्पीभवन सदा होता रहता है। इस वाष्पीभवन-के लिए जो उष्णता चाहिये उसे वह आस पासके पदार्थोंसे ही ग्रहण करता है। एक आध चौड़े बर-तनमें पानी भर कर उसको सारी रात खुले स्थान में रख छोड़नेसे, वह बहुत ही ठंढा हो जाता है। इस पानीमें वाष्पीभवन स्वभावतः ही जारी रहता है। इसलिए इसके लिए लगने वाली सारी उष्णता पानीमेंसे ही खर्च होती है और यही कारण है कि पानी ठंढा हो जाता है। गरमीके मौसममें पानी ठढा करनेके लिए बर्तनके चारों ओर गीला कपड़ा लपेटा जाता है। कपड़ा गीला बनाये रखने-से पानी ठंढा हो जाता है। गीला कपड़ा लपेटने-का यही उद्देश है कि बरतनके चारों ओरसे वाष्पीभवन होता रहे। वाष्पीभवनके लिए लगने-वाली उष्णता बरतनके पानीमेंसे ली जाती है और यही कारण है कि पानी ठंढा हो जाता है। मट्टीके बर्तनमें पानी क्यों ठंढा रहता है; इसका कारण भी यहां बता देना अप्रासंगिक न होगा। मट्टीके बर-तनमें अनेक महीन छिद्र रहते हैं, जिनमेंसे थोड़ा

थोड़ा पानी बाहर निकलता रहता है। यह पानी भाप बन कर उड़ता रहता है, जिससे भीतरके जलकी गरमी खर्च हो जाती है। गरमीके मौसममें कपड़े गीले कर छायामें सुखानेसे वह थोड़े ही समयमें ठंढे हो जाते हैं। इसका कारण भी वही वाष्पीभ्वन है।

इस वाष्पीभवनसे इतनी शीतलता उत्पन्न की जा सकती है कि पानीसे बर्फ बनायी जा सकती है। इस प्रकार बर्फ बनानेकी विधि-अति सरल है। परन्तु इसके लिए यंत्रोंकी आवश्यकता होती है।

प्रयोगों द्वारा सिद्ध हो चुका है कि एक सेर काष्ठ निर्माण करनेके लिए करीब दो सौ सेर जल-का वाष्पीभवन किया जाता है और एक सेर क्षारांश बनानेके लिए २००० सेर पानीका वाष्पी-भवन करना पड़ता है। इस परसे अनुमान किया जा सकता है कि वनस्पति कितनी अधिक शीतलता उत्पन्न करती है।

४—वर्षा और वनस्पति

र्षा और वनस्पतिका पारस्परिक सम्बन्ध बतानेके पहले ऋतुओं और जल-बरसनेके कारणों पर विचार करना परमावश्यक है। कारण कि इसके बिना वर्षा और वनस्पतिका सम्बन्ध समझमें नहीं आसकता।

ऋतु

हम भारतवासी मुख्यतः तीन ऋतु मानते हैं। यह तीन ऋतु हैं—गरमी, बरसात और जाड़ा। तथापि प्राचीन संस्कृत ग्रंथोंमें छः ऋतुओंके नाम दिये गये हैं। परन्तु इससे यह नहीं मान लेना चाहिये कि सारे भूमंडल पर तीन ही ऋतु होती हैं। कारण कि भिन्न भिन्न देशोंमें गरमी और शीतकाल तो नियमित समय पर नियम पूर्वक होते हैं; परन्तु वर्षाकालको कोई नियम लागू नहीं होता। कई देशोंमें बारहों महीने पानी बरसा करता है और कुछ देशोंमें नियमित

समयपर नियम पूर्वक वर्षाकाल आता रहता है। अतएव वर्षाकालको एक स्वतंत्र ऋतु मान सकते हैं। असलमें दो ही ऋतु हैं। वर्षा कई बातोंपर अवलम्बित रहती है और यह एक स्वतंत्र सृष्टि व्यापार है।

उष्णताके न्यूनाधिक परिमाण होनेसे ही शीतकाल और ग्रीष्मकाल होते हैं। यह बात तो निर्विवाद है कि उष्णता सूर्यसे प्राप्त होती है। तथापि यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जब सूर्य और पृथ्वी दोनोंका ही अस्तित्व है, तो उष्णता क्यों न्यूनाधिक होती है ?

पृथ्वी भी एक ग्रह है। अन्य ग्रहोंकी तरह यह भी सूर्यके चारों तरफ घूमती है। और उसको एक प्रदक्षिणा पूरी करनेके लिए नियमित समय लगता है। ग्रहोंके घूमनेकी कक्षाएं सूर्यसे भिन्न भिन्न दूरीपर हैं। सूर्य इन सबके केन्द्र स्थानमें स्थित है। परन्तु ग्रहोंकी कक्षाएं वृत्ताकार नहीं हैं; दीर्घवृत्ताकार हैं। अतएव परिक्रमा करते हुए कभी तो ग्रह सूर्यके पास आ जाते हैं और कभी दूर चले जाते हैं। जब पास आ जाते हैं तो सूर्यका आकार बड़ा नज़र आता है और उस समय उष्णता भी ज्यादा प्राप्त होती है। परन्तु ग्रहोंके

पास आने और दूर जानेमें बड़ा भारी अंतर नहीं है; अतएव प्राप्त हुई उष्णतामें विशेष अन्तर अनुभव नहीं होता; फिर कम ज़्यादा गरमी क्यों होती है ? सर्दी और गरमीमें उष्णताके मानमें बड़ा अन्तर रहता है । यह अन्तर, पृथ्वीके पास आ जाने या दूर चले जानेसे नहीं पड़ता। तब ऋतु कैसे होती हैं ?

पृथ्वी सूर्यके चारों ओर घूमती है और साथ ही साथ अपनी धुरी पर भी घूमती है। यदि पृथ्वीकी धुरी उसकी कक्षासे समकोण बनाती, तो ऋतु परिवर्तन होता ही नहीं। रात दिनके सिवा अन्य किसी प्रकारका परिवर्तन नहीं होता। तब विषुववृत्तपर सूर्यकी किरणें लम्ब रेखामें पड़तीं; जिससे वहां अतिशय उष्णता होती। विषुववृत्तके दक्षिण और उत्तरमें किरणें तिरछी पड़तीं; जिससे क्रमशः उष्णता घटती जाती और ध्रुव प्रदेशोंमें बहुत ही ज़्यादा सरदी पड़ती। यह उष्णताका मान सदा सर्वदा एक सा बना रहता। यह सच है कि दीर्घवृत्तके केन्द्र स्थानके पास, जहाँ सूर्य रहता है, पृथ्वीके आजानेसे उष्णता कुछ अधिक बढ़ जाती तथापि उष्णतामें उतना अधिक अन्तर न पड़ता कि भिन्न भिन्न ऋतुएं होतीं। इतना

हो नहीं, वरन् सभी स्थानोंमें दिनरात बारह बारह घंटेके होते; परन्तु हमारा अनुभव इस बातको सत्य साबित नहीं करता।

जिस समय विषुववृत्तके दक्षिणमें शीतकाल होता है, उस समय उत्तर गोलार्धमें ग्रीष्म ऋतु होती है। शीतकाल और ग्रीष्म छः छः मास के होते हैं। ग्रीष्मकालमें रात छोटी और दिन बड़ा होता है और शीतकालमें रात बड़ी और दिन छोटा होता है।

विषुववृत्तके उत्तर या दक्षिणमें जिस समय गरमी होती है, उस समय वहाँके सब भागोंमें उष्णताका मान एक दम नहीं बढ़ता और न एक दम घटता ही है। कल्पना कीजिये कि उत्तर गोलार्धमें उष्णकालका समय निकट है। सबसे पहले विषुववृत्तके पास वाले प्रदेशोंमें ग्रीष्मकाल भासित होने लगेगा और तब क्रमशः उत्तरकी ओर गरमीका प्रभाव बढ़ता जायगा और दक्षिण गोलार्धमें सरदी बढ़ती जायगी। इस प्रकार कुछ महीने बीत जाने पर उत्तर गोलार्धमें उत्तरकी ओर धीरे धीरे उष्णता घटने लगेगी एवं दक्षिण गोलार्धमें धीरे धीरे बढ़ने लगेगी।

ऊपर लिखा हुआ क्रम जारी रहनेपर जहाँ
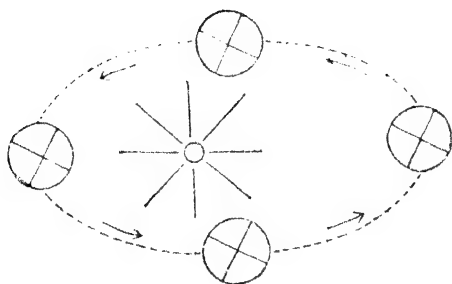
चित्र ३—पृथ्वीका क्रान्तिमार्ग दीर्घ वृत्ताकार (वैज़ावी) है। पृथ्वी दीर्घ वृत्तकी एक नाभी पर स्थित है। उसकी अक्ष क्रान्ति पथकी ओर झुकी रहती है। इसीसे ऋतु परिवर्तन होता है। जब उत्तर गोलार्धमें गरमी होती है, तब दक्षिणार्धमें सरदी होती है, इत्यादि। (देखिये पृष्ठ ३६)

जहाँ अधिकाधिक उष्णता भासित होने लगती है वहाँ सूर्य धीरे धीरे सर पर आने लगता है। अर्थात् उन स्थानोंमें सूर्यकी किरणें लम्ब रेखामें गिरने लगती हैं; जिससे दिन बड़े और रात छोटी होती जाती हैं। अब यह देखेंगे कि किरणोंके लम्ब रेखामें पड़ने और रात दिनके छोटे बड़े होनेसे उष्णताका मान कम ज़्यादा क्यों होता है?

लम्ब किरणोंसे जितनी उष्णता प्राप्त होती है, उतनी तिरछी किरणोंसे प्राप्त नहीं होती। कारण कि लम्ब किरणें जितने स्थान पर फैलती हैं उससे अधिक स्थान तिरछी किरणोंके लिए आवश्यक होता है अर्थात् नियमित स्थानपर कम किरणोंके पड़नेसे गरमी भी कम होती है; इस बातको स्पष्टतया समझनेके लिए नीचे एक प्रयोग दिया जाता है।

सबेरे सूर्योदय होने पर खिड़की या दरवाज़ेमें से होकर सूर्यकी किरणें घरमें प्रवेश करती हैं। इन किरणोंके मार्गमें एक लकड़ीका तख्ता इस ढंगसे खड़ा करो कि वह किरणोंसे सम कोण बनावे। तख्ते पर देखलो कि प्रकाश और उष्णता कितनी है, अब इसी तख्तेको खूब तिरछा रखो, जिसमें किरणें ज़्यादा जगहमें फैल जायँ। तख्ते पर किरणें तिरछी गिरेंगी, जिससे प्रकाश और उष्णता कम हो

जायगी। यही कारण है कि शामको और सवेरे कम गरमी मालूम होती है और दोपहर को ज़्यादा।

सूर्यकी किरणें कर्कवृत्तके उत्तरमें और मकर-वृत्तके दक्षिणमें सीधी नहीं पड़तीं। सूर्य मकर वृत्त-से कर्कवृत्त तक और वहाँसे पुनः मकरवृत्त तक प्रवास करता है। एक वर्षमें सूर्य यह प्रवास खतम कर अपने पहलेके स्थान पर लौट आता है। और यही कारण है कि मकरवृत्त और कर्कवृत्त-के बीचके प्रदेशोंमें सूर्य वर्षमें दो बार सर पर आता है, जिससे छाया कभी उत्तरकी ओरको और कभी दक्षिणकी ओरको पड़ती है। मकर वृत्तके दक्षिणमें परछाईं सदा दक्षिणकी ओरको पड़ती है। और कर्कवृत्तके उत्तरमें सदा उत्तरकी ओरको उदा-हरणार्थ, काशी कर्कवृत्तके उत्तरमें है। वहाँ सूर्य कभी सर पर नहीं आता। और परछाईं सदा उत्तरकी ओरको पड़ती है। सूर्यका मार्ग बारह राशि और २७ नक्षत्रोंमें बँटा हुआ है। पृथ्वीकी ही गतिके कारण सूर्य भिन्न भिन्न राशि या नक्षत्रोंमें जाता हुआ नज़र आता है। इस मार्गको क्रान्तिवृत्त कहते हैं। इसके बिलकुल दक्षिणमें मकर राशि और उत्तरमें कर्कराशि है। इन राशियोंसे ही वृत्तोंका नाम करण किया गया है।

अयन

सूर्यकी दृश्य गतिको ही अयन कहते हैं। कर्क-वृत्तसे दक्षिणमें जब सूर्य मकरवृत्तकी ओरको जाने लगता है तो उसे दक्षिणायन कहते हैं। और मकर वृत्तसे उत्तरकी अर्थात् कर्कवृत्तकी ओरको बढ़ने लगे तो उत्तरायण कहते हैं। दक्षिणायनके तीन मास बीतजाने पर हमारे यहाँ शीतकाल प्रारंभ होताहै। एवं उत्तरायण लगनेके पूर्व शीत कालका मध्य रहता है। उसी प्रकार आधा उत्तरायण खतम होते ही गरमीका मौसम प्रारंभ होता है। एवं दक्षिणायनके प्रारंभमें ग्रीष्मका मध्य काल रहता है।

असलमें सूर्य घूमता नहीं है। वह स्थिर है। पृथ्वी जरूर उसके चारों ओर घूमती है। अब यहाँ कोई यह प्रश्न करेगा कि अयन क्यों होते हैं? अतएव इस प्रश्नको हल कर देना भी आवश्यक है।

पृथ्वीकी धुरी अपनी कक्षासे ६६½° का कोण बनाती है। अतएव छः मास तक सूर्य उतर ध्रुव-की ओरको नज़र आता है और छः मास तक दक्षिण ध्रुवकी ओरको। जिस समय सूर्य दक्षिण ध्रुवकी ओर रहता है उस समय उधरके प्रदेशोंमें सूर्यकी किरणें सीधी पड़ती हैं। और उत्तर ध्रुवके प्रदेशों पर किरणें तिरछी पड़ती हैं। इसी समय

दक्षिणायन होता है और जब सूर्य उत्तर ध्रुवकी ओर रहता है, तब उत्तरायण होता है।

अयन गतिसे दो कार्य होते हैं। एक तो सूर्यकी किरणें भिन्न भिन्न स्थानों पर सीधी पड़ती हैं; दूसरे दिन रात छोटे बड़े होते हैं। ऊपर दिखा आये हैं कि सीधी किरणोंसे अधिक उष्णता प्राप्त होती है और गरमोमें दिन बड़ा और रात छोटी होती है।

नियतकालिक वायुका (Seasonal winds) इस पुस्तकके विषयसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, अतएव वर्षाके कारणों पर यहाँ कुछ नहीं लिख कर वर्षा पर विचार करेंगे।

वर्षा

हवाकी भापका पानीके रूपमें जमीन पर बरसनेकी क्रियाको ही 'वर्षा' संज्ञा दी गई है। हवामें जलवाष्पको अदृश्य रूपमें ग्रहण करनेका गुण वर्तमान है। हवामें पाई जानेवाली भापका परिमाण उष्णता पर अवलम्बित रहता है। हवा जितनी ही अधिक गरम होगी, उतनी ही अधिक जलवाष्प उसमें अदृश्य रूपमें रह सकेगी। उससे अधिक भाप हवामें मिलते ही, वह पानीके रूपमें बरसने लगेगी। परन्तु यदि हवाकी उष्णता बढ़ा दी जाय,

तो वह और भी अधिक भाप रख सकेगी। उसी प्रकार यदि हवाकी उष्णता घटा दी जाय, तो अधिकांश जल वाष्प जलके रूपमें बरस पड़ेगी।

प्रयोगार्थ एक काँचका पात्र लीजिये। और उसमें सूखी हवा भर लीजिये। पात्रमें हवा तो रहती ही है; परन्तु उसमें पानीका अंश जरूर रहता है। इसलिए यह जरूरी है कि कोई ऐसा पदार्थ इस बरतनमें डाला जाय, जो पात्रके भीतरकी वायुकी नमी सोख ले। गंधकाम्ल एक जलशोषक पदार्थ है। इसे बरतनमें डाल देनेसे हवा सूखी हो जायगी। बरतनमें गंधकाम्ल डाल कर उसको रबरके एक बड़े टुकड़े पर औंधा रख देना चाहिये; जिसमें काँचके बर्तनमेंकी हवा वातावरणमें से तरी ग्रहण न कर सके। तब किसी दूसरे बरतनमें पानी रखकर उसे आग पर रखो और इस बरतनकी पानीकी भापको एक रबरकी नली द्वारा सूखी हवा वाले कांचके बरतन में पहुँचा दो।

कल्पना कीजिये कि पहले बरतनमेंकी हवाका तापक्रम ५०° है। इस ताप परिमाणवाली हवा जितनी जल-वाष्प ग्रहण कर सकती है उतनी भाप दूसरे बरतनमेंसे नली द्वारा पहुँचानेसे, ग्रहण

कर लेगी। परन्तु उससे अधिक भाप पहुँचाने पर बरतनकी हवा उसे ग्रहण न कर सकेगी और तब वह भाप पुनः जलमें बदल जायगी। और कांचके पात्रके भीतरी भाग पर पानीकी बूँदें जम जायंगी। यदि इस बरतनको और गरम करें, तो भीतर की हवा भी गरम हो जायगी और तब वह अधिक भाप ग्रहण कर सकेगी। यदि इस बरतनमें और भाप पहुँचाते रहेंगे, तो कुछ समय बाद पुनः बरतनके भीतरी भाग पर पानीकी छोटी छोटी बूँदे जमने लगेंगी।

ऊपरके विवेचनसे यह साफ मालूम हो जायगा कि परिमित ताप-परिमाण युत हवा परिमित सीमामें ही भाप ग्रहण कर सकती है। इस सीमासे अधिक भाप प्राप्त होते ही वह जलरूप ग्रहण कर लेगी। जबतक ताप-क्रम बढ़ाया न जायगा, वायु परिमित सीमासे अधिक भाप ग्रहण न कर सकेगी। अर्थात् ज्यों ज्यों ताप-क्रम बढ़ाया जायगा, त्यों त्यों वायुकी वाष्पधारण शक्ति भी बढ़ती जायगी।

एक और रीतिसे वातावरणकी जलवाष्प जलके रूपमें परिवर्तित की जा सकती है। कल्पना कीजिये कि वायुमें कुछ जलवाष्प वर्तमान है एवं वायुका ताप क्रम भी हम जानते हैं। इस वायुमें

भाप इतनी कम है कि उसको पानीके रूपमें बदलनेके लिए बहुत ही अधिक जलवाष्प पहुँचानी पड़ेगी। परन्तु उतनी अधिक भापके अभावके कारण हम काफी भाप हवामें नहीं पहुँचा सकते। अतएव हमको अपने उद्देशकी सिद्धिके लिए किसी दूसरे ही मार्गका अवलम्बन करना पड़ेगा। और यह मार्ग है वायुका ताप-क्रम घटाना। क्रमशः ताप-क्रम घटानेसे शीघ्र ही वह अवस्था प्राप्त हो जायगी कि हवाकी भाप जलका रूप ग्रहण कर लेगी। ताप-परिमाण जितना ही कम किया जायगा उतनी ही अधिक भाप जलका रूप ग्रहण कर लेगी। जलवाष्पको जल रूपमें परिवर्तित करनेके लिए उक्त दोनों क्रियाओंमेंसे किसी एकका अव-लम्बन करना पड़ेगा। वनस्पति द्वारा यह कार्य किस प्रकार सम्पन्न होता है, यह आगे चल कर बताया जायगा।

नैऋत्य दिशाका वायु प्रवाह (मानसून नामक वायु प्रवाह) अपने साथ पुष्कल जलवाष्प लाता है। भाप वायुमें इतनी अधिक होती है कि कुछ अधिक भापके वायुमें मिलते ही या तापक्रमके घटते ही वह जलरूपमें बरसने लगती है। समुद्र-के पृष्ठ भागकी अपेक्षा ज़मीन पर उष्णता कम रहती

है। इसके दो कारण हैं—समुद्रकी सतहसे भूमिकी ऊंचाई और वृक्षों और प्राणियों द्वारा छोड़ी हुई भाप। यही कारण है कि जमीन पर आकर जल-वाष्प पानीका रूप ग्रहण कर बरसने लगती है।

वनस्पति और वर्षाका सम्बन्ध

शायद यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होगा कि जमीन पर उष्णता कम क्यों होती है? पदार्थ-विज्ञानका नियम है कि समुद्रकी सतहसे ज्यों ज्यों ऊंचे जाइये त्यों त्यों उष्णताका मान घटता जाता है। इसके कई कारण हैं। उनमेंसे दो मुख्य कारणों पर ही यहाँ विचार किया जायगा। पृथ्वीकी सतह की हवा पर वातावरणका भार अधिक रहता है अतएव वह अधिक घन होती है। भूपृष्ठसे ज्यों ज्यों ऊंचे चढ़ते जाइये, त्यों त्यों वातावरणका भार कम होता जाता है, जिससे हवा भी अधिकाधिक हलकी होती जाती है। हवाके हलके होनेसे और उसकी तापको रोक रखनेकी शक्तिके कम हो जानेसे ऊंचे स्थानोंकी वायु गरम नहीं हो पाती और उसका तापक्रम कम रहता है। दूसरा कारण है सूर्यकी किरणोंका परावर्तन। किरणें परावर्तित होकर भूपृष्ठ भाग पर फैल जाती हैं, जिससे उष्णता अधिक होती है। हमारा

रोज़का अनुभव भी यही कहता है कि ऊंचे स्थान पर शीतलता अधिक रहती है। समुद्रकी सतहसे हजारों फुट ऊंची होनेके कारण हिमाचलकी चोटियों पर बहुत ही ज़्यादा सरदी पड़ती है जिससे वहाँ हमेशा बर्फ बनी रहती है। गर्मीके मौसममें लोग शिमला, मांथेरान, महाबलेश्वर, पंचमढ़ी आदि पार्वतीय स्थानों पर जाकर रहते हैं। यह स्थान समुद्रकी सतहसे बहुत ही ऊंचे हैं इस लिए यहाँ सदा सर्दी बनी रहती है। प्रयोगों द्वारा सिद्ध हो चुका है कि प्रति ३३० फुट ऊंचा चढ़ने पर तापक्रम १° फा घट जाता है अर्थात् १° उष्णता घट जाती है।

जमीन परकी उष्णता कम करनेमें वनस्पति भी एक बड़ा भाग लेती है। वनस्पति उष्णता किस प्रकार कम करती है, यह बात किसी गत परिच्छेदमें बता आये हैं। समान ऊंचाईवाले स्थानोंमेंसे, जिस स्थानपर वनस्पति अधिक होगी वहाँ ठंडक भी ज्यादा होगी और कम वनस्पति-वाले स्थानमें गरमी ज्यादा होगी। यही कारण है कि समुद्रके पृष्ठभागकी अपेक्षा भूपृष्ठ पर उष्णता कम होनेके लिए, समुद्रकी सतहसे स्थान विशेषकी ऊंचाई और वनस्पतिका अस्तित्व ही कारण होता

है। जल वाष्पको जलरूपमें बरसानेके लिए शीत-लताकी आवश्यकता होती है; और वह तो भूपृष्ठ पर स्वभावतः ही विद्यमान रहती है।

पानी बरसनेका दूसरा कारण है जलवाष्पयुत वायुमें अधिक जलवाष्प मिलाना। यह काम भी नैसर्गिक रीतिसे जमीन पर होता रहता है। नदी नाले, तालाब आदि जलाशयोंसे सदा वाष्पीभवन होता रहता है। यह जलवाष्प भूपृष्ठ परकी वायुमें सदा विद्यमान रहती है और जल बरसानेमें पुष्कल सहायता पहुँचाती है।

वर्षा प्रारंभ हो जाने पर, बरसे हुए जलसे भी, अधिक पानी बरसानेमें बहुत सहायता मिलती है। पानी बरसनेसे हवामें शीतलता फैल जाती है और बरसे हुए पानीका भी वाष्पीभवन होता रहता है। इससे भी वर्षा होनेमें सहायता पहुँचती है। किसी गत परिच्छेदमें हम लिख आये हैं कि वनस्पतिके पत्तोंके महीन छिद्रों द्वारा वाष्पीभवन की क्रिया सदा होती रहती है। और यही कारण है कि जहाँ ज्यादा वनस्पति रहती है वहाँकी वायु-में भी ज्यादा भाप मौजूद रहती है। यदि ऐसे जलवाष्प युत स्थानसे भापसे लदी हुई वायु गुजरने लगे, तो वह अवश्य ही जल रूपमें बरस

पड़ेगी। क्योंकि प्रथम तो वनस्पतिके अस्तित्वके कारण उस स्थान पर शीतलता अधिक बनी रहती है। और द्वितीय वाष्पी भवनकी क्रियासे उस स्थानकी वायुमें जलवाष्प भी ज्यादा मौजूद रहती है। अर्थात् पानी बरसनेके लिए जिन दो कारणोंका होना जरूरी बता आये हैं, वह दोनों ही वनस्पतिकी कृपासे वहाँ मौजूद रहते हैं। किसी स्थानको समुद्रकी सतहसे अधिक ऊंचा करना हमारे हाथमें नहीं है। परन्तु अपने उद्देशकी सिद्धिके लिए हम किसी दूसरे साधनका अवलम्बन कर सकते हैं और वह साधन है झाड़ोंका लगाना।

पर्जन्य-व्याप्ति

भारतवर्षके सभी प्रान्तोंमें एक सी वर्षा नहीं होती। इसके कई कारण हैं। उन पर यहाँ संक्षेपमें कुछ लिखा जायगा।

वर्षाके न्यूनाधिक मानसे भारतवर्ष चार कल्पित भागोंमें बांटा जासकता है। यह कल्पित भाग हैं—१ अति वृष्टि (Area of excessive rainfall); २ अधिक वृष्टि (Area of moderate rainfall); ३ अल्प वृष्टि (Area of precarious rainfall) और ४ अनावृष्टि (Area of no rainfall) ।

पन्द्रह इंचसे कम वर्षावाले प्रदेशोंको हमने अनावृष्टिके प्रदेशोंमें गिना है। १५-३० इंचतककी वर्षावाले प्रदेश अल्पवृष्टि, ३०-५० इंच वर्षा वाले प्रदेश अधिक वृष्टि और इससे अधिक पानी जिन प्रान्तोंमें बरसता हो, वह अति वर्षाका प्रदेश माना जाना चाहिये।

अति वृष्टिका प्रदेश

गोवा, कोंकण, ट्रिवेंड्रम आदि स्थान समुद्रकी सतहसे करीब करीब बराबर हैं। सह्याद्रिसे पश्चिमकी ओरवाले भूभागपर बहुत ज़्यादा वर्षा होती है। यह भूभाग ट्रिवेंड्रमसे लगाकर उत्तरकी ओरको दमनतक फैला हुआ है। इस भूभागपर अतिवृष्टि होनेका कारण यह है कि यहाँसे समुद्र बहुत पास है। समुद्रसे आनेवाला जलवाष्पयुत वायुप्रवाह सह्याद्रिके उच्च शिखरोंसे आकर टकराता है। रास्ता रुक जानेसे वायु वहीं रम जाती है और अधिकाधिक वायुका संचय होता जाता है, जिससे खूब वर्षा होती है। सह्याद्रिके उच्चशृंगोंको पार करनेके लिए जितनी उष्णता आवश्यक होती है, वह सब बादल अपने पाससे ही खर्च करते हैं। और उष्णता कम होते ही भाप जल बनकर बरसने लगती है।

दूसरा अतिवृष्टिका प्रदेश गंगाके मुहानेसे लगाकर ब्रह्मपुत्राके प्रदेशोंमेंसे होकर उत्तरकी ओर आसामके पश्चिमी प्रान्तोंसे हिमालय तक फैला हुआ है। वहांसे यह प्रदेश हिमालयके पास पास काश्मीरतक फैला हुआ है। वर्षाका प्रवाह बंगालके उपसागरसे उत्तरकी ओरको जाता है। वहाँ आसाम और ब्रह्मदेशकी पर्वत श्रेणियां उसके मार्गको रोक देती हैं। अतएव यह प्रवाह बंगाल देशकी ओरको झुक जाता है। परन्तु सामने हिमालय पर्वत मार्ग रोक लेता है, इसलिए भागीरथीके तटवर्ती प्रान्तोंमें होता हुआ यह प्रवाह पेशावर तक चला जाता है।

हिमालय पर्वतकी अत्युच्च दीवार सामने आ जानेसे इस वायु प्रवाहका उत्तरी मार्ग बंद हो जाता है; इसलिए इसमेंकी अधिकांश जल वाष्प इन्हीं प्रदेशोंपर बरस पड़ती है।

अधिक वृष्टिका प्रदेश

अल्प वृष्टिके प्रदेशोंको छोड़कर शेष-प्रान्तोंमें अधिक वृष्टि होती है। सह्याद्रिके पूर्वमें अधिक वृष्टिका प्रदेश है। पास ही अतिवृष्टिका प्रदेश आ जानेसे यहां अधिक वृष्टि होना अनिवार्य है। कर्नाटकमें अधिक वृष्टिका कारण है अरबी समुद्र और

बंगालके उपसागरके वायु प्रवाहोंका सम्मिलन। इसके अतिरिक्त मद्रासके किनारेपर ईशान्यके वायु प्रवाहका भी विशेष प्रभाव पड़ता है। ऊपर लिख आये हैं कि अतिवृष्टिके प्रदेशोंके पासवाले प्रान्तोंमें अधिक वृष्टि होती है। उसी प्रकार बंगाल, विहार, उड़ीसा, मध्यभारत आदि कुछ प्रान्तोंमें दो वायु प्रवाहोंके कारण अधिक वृष्टि होती है। इन दो वायु प्रवाहोंमेंसे एक बंगालकी खाड़ीकी तरफसे आता है और दूसरा तापती और नर्मदाके मुखकी तरफसे।

सतपूड़ाके पहाड़ी प्रान्त, जोधपुरका पठार, मध्यप्रदेश और मध्यभारतके देशी राज्योंमें अधिक वर्षा तो होती ही है, साथ ही इन प्रान्तोंमें वर्षा अधिक निश्चित रहती है; कारण कि यह प्रान्त पहाड़ों और वनस्पतिसे भरे पूरे हैं। इसके अलावा नैऋत्य दिशासे अरबी समुद्रका वायु प्रवाह और पूर्वसे बंगालकी खाड़ीका वायु प्रवाह प्रवाहित होता रहता है, जिससे इन प्रान्तोंमें अवश्य ही अधिक वर्षा होती है। क्योंकि इन्हीं प्रान्तोंपर उक्त दोनों वायु प्रवाहोंकी मुठभेड़ होती है। इधर कुछ वर्षोंसे देशी रियासतोंके जगलोंका नाश हो रहा है, जिससे वर्षाकी न्यूनता भासित होने लगी है।

अनावृष्टिका प्रदेश

कच्छ, सिंधभाग, राजपूतानेका पश्चिमी भाग और पंजाबका नैऋत्य दिशावाला भूभाग अनावृष्टिके प्रदेशमें शामिल है। कच्छके पास समुद्रका एक सिरा आ गया है। शेष सारा भूभाग बलूचिस्तान, अफगानिस्तान आदि भूप्रदेशोंसे व्याप्त है। अतएव वर्षाके लिए आवश्यक जल वाष्प इन प्रदेशों तक नहीं पहुँच पाती; मार्गमें ही खर्च हो जाती है। बंगालकी खाड़ीका वायु प्रवाह इन प्रदेशोंमें पहुँचने तक जलवाष्प रहित हो जाता है। इसके अलावा इन प्रान्तोंमें वनस्पतिका अभाव सा ही है। सारा प्रदेश वालुकामय है। अतएव यहांकी वायुमें जलवाष्पका भी अभाव सा ही रहता है। इसलिए वायुकी जलवाष्पको जल रूपमें बरसानेके लिए वह कुछ भी मदद नहीं पहुँचा सकती।

अल्प वृष्टिका प्रदेश

काठियावाड़, गुजरातका पश्चिमी भाग, राजपूतानेका पूर्वभाग, पंजाबका अतिवृष्टि और अनावृष्टिके बीचका प्रदेश एवं आगरा और प्रयागके बीचका प्रान्त, अल्पवृष्टिके प्रदेशमें शामिल है। अरबके समुद्रसे आनेवाला जलवाष्पयुत वायु प्रवाह

खंभायतकी खाड़ीमेंसे गुजरते ही मध्य हिन्दुस्तानकी ओरको झुक जाता है। इस प्रवाहके पूर्वकी ओर झुकनेका कारण यह है कि काठियावाड़, कच्छ, राजपूतानेका पश्चिमी भाग आदि प्रदेशोंपर वायव्य दिशाका वायु प्रवाह बहता रहता है। यह वायु प्रवाह बलूचिस्तान, अरब, ईरान आदिके समान शुष्क देशोंसे आता है। अतएव यह जलवाष्प रहित होता है। और यही वायु नैऋत्य दिशाकी ओरसे आनेवाले बाष्पयुत वायु प्रवाहको उधर जानेसे रोकता है। बंगालकी खाड़ीवाला वायु प्रवाह जलवाष्पसे भरा रहता है। यह बरसता हुआ आगे बढ़ता है, जिससे यहां आनेतक उसका जलवाष्पका संचय बहुत ही कम हो जाता है। और यही कारण है कि यहां पानी कम बरसता है।

दूसरा अल्पवृष्टिका प्रदेश सह्याद्रिके पूर्वमें है। यदि इस भूभागको एक चतुर्भुज मान लें तो उसके चारों कोनोंपर आग्नेयमें चित्तूर, नैऋत्य में मैसूर, वायव्यमें धूलिया और वायव्यमें अमरावती पड़ेगी। भारतके मानचित्रमें इन चारों स्थानोंको सरल रेखासे मिला देनेसे एक चतुर्भुज बन जायगा। इस चतुर्भुजकी सीमासे घिरा हुआ सारा प्रदेश अल्पवृष्टिका समझना चाहिये।

सह्याद्रिके अति निकट अल्प वर्षा होनेका कारण यह है कि समुद्रपरसे आनेवाला जलवाष्प-युत वायु प्रवाह सह्याद्रिसे रुक जाता है। पीछेसे और भी जलवाष्प युत वायु आती ही रहती है। पीछेकी वायुके प्रवाहके ज़ोरसे बादल उड़कर एकदम दूर जा गिरते हैं। और यही कारण है कि सह्याद्रिकी पूर्वी तराईसे कुछ मील की दूरी तक वर्षा कम होती है। ऊपर बताई हुई सीमाके पूर्व के प्रदेशोंमें बंगालकी खाड़ीका वायु प्रवाह भी अधिक वर्षा करानेमें मुख्यतः सहायता पहुँचाता है।

उपसंहार

अतिवृष्टिके प्रदेशोंमें अकाल पड़ना बिलकुल संभव नहीं। अधिक वृष्टिके प्रदेशोंमें बहुत करके अकाल पड़ता ही नहीं। अनावृष्टिके प्रदेशोंमें तो वर्षाके अभावमें अवश्य ही अवर्षण होता है, परन्तु इन प्रान्तोंमें नहरें बनवा दी गई हैं; जिससे अकाल की भीति नष्ट हो गई है। अल्पवृष्टिके प्रदेशोंमें ही अकाल का भय बना रहता है।

भारतमें जितने अकाल पड़े हैं, वह सब इन्हीं प्रान्तोंमें। अतएव यह जरूरी है कि इन प्रान्तोंमें वर्षा बढ़ानेका यत्न किया जाय। वनस्पति लगानेसे यह उद्देश अधिकाँशमें पूर्ण हो सकता है।

ऊपर अनावृष्टिके प्रदेशों पर विचार कर आये हैं। उत्तर भारतके इस भूभाग तक जब जलवाष्प युत वायु प्रवाह पहुँच ही नहीं सकता, तो वर्षा क्योंकर हो सकती है। वायुके भापमें अभावके कारण ही इन प्रन्तोंमें अनावृष्टि होती है। परन्तु वायुमेंके जल वाष्पसंचयको इतना अधिक बढ़ाना मानवी शक्तिके बाहर है। अतएव वनस्पति लगानेसे जलवाष्पसंचय इतना अधिक नहीं बढ़ सकेगा। तथापि यदि वनस्पति लगाई जायगी तो कुछ न कुछ लाभ अवश्य होगा।

दक्षिण भारतमें वनस्पति लगानेसे अधिक लाभ होनेकी संभावना है। कारण कि इस प्रदेश पर अरबी समुद्रका वायु प्रवाह-प्रवाहित होता है। सह्याद्रि पर्वत पर अतिवृष्टि होती है और ऊपर लिखे हुए अल्पवृष्टिके प्रदेशके पूर्वमें अधिक वृष्टि-का देश है। सह्याद्रि परसे आनेवाला वायु प्रवाह भाप लाद कर इसी प्रदेश परसे बहता है। परन्तु वह जलरूपमें नहीं बरसता। यदि वनस्पतिकी वृद्धि की जायगी तो इस भूभाग पर अवश्य ही अधिक वर्षा होने लगेगी।

कई विद्वान इस बातसे सहमत नहीं हैं कि जंगल बढ़ानेसे वर्षाका परिमाण बढ़ जाता है।

परन्तु फ्रांसमें यह बात प्रयोगों द्वारा सिद्ध की जा चुकी है। प्रति पक्षियोंका कहना है कि जंगल बढ़ानेसे वर्षाका परिमाण बढ़ जाता तो एक साल कम और दूसरे साल ज्यादा वर्षा क्यों होती? इस प्रश्नको हल करनेके लिए वह इधर उधर भटकते फिरते हैं। कुछ लोग सूर्यके पृष्ठ-भागके काले धब्बोंसे इसका सम्बंध जोड़ते हैं। उनकी रायमें जिस वर्ष सूर्य पर काले धब्बे कम और छोटे होते हैं उस साल गरमी ज़्यादा पड़ती है। अधिक उष्णता पड़नेसे वाष्पोत्पत्ति अधिक होती है और जलवाष्प अधिक होनेसे उस वर्ष पानी भी ज़्यादा बरसता है। परन्तु हम इन दलीलोंमें पड़ना नहीं चाहते। हमारा कहना तो इतना ही है कि पानी बरसानेमें जो अनेक कारण सहायता पहुँचाते हैं, वनस्पति भी उनमेंसे एक है। इतना ही नहीं इस काममें उसका एक बड़ा भाग रहता है। पानी बरसाने के लिए यह आवश्यक है कि हवाकी उष्णता कम की जाय और जलवाष्पकी वृद्धि की जाय। और वनस्पतिसे यह उद्देश अंशतः किस प्रकार साध्य होता है, यह बात गत परिच्छेदोंमें लिख आये हैं। सूर्यके धब्बोंकी बात भी सर्व सम्मत नहीं है। यह एक अनुभव सिद्ध बात है कि

जिस साल पृथ्वीके एक देश या प्रदेशमें अकाल पड़ता है उसी साल दूसरी जगह अच्छा सुकाल होता है। वर्षा पर सूर्यके धब्बोंका प्रभाव पड़नेकी बात कहनेवालोंके मतके अनुसार होना तो यह चाहिये था कि सारी पृथ्वीपर उस साल कम या ज़्यादा पानी बरसना चाहिये था। परन्तु ऐसा नहीं होता है। यदि सूर्यके धब्बोंकी बात मान भी लें, तो भी जितनी ही ज्यादा भाप जल रूपमें बरसाई जा सकेगी, उतना ही अच्छा है। प्रकृति अपना कार्य करती रहेगी और उसके साथ ही वनस्पति भी अपना कर्तव्य पालन करती ही रहेगी।

५—जल संचय

म भारतवासियोंके लिए जल-संचय की ओर ध्यान देना बहुत ही जरूरी है; कारण कि भारत कृषि-प्रधान देश है। यहां बरसातमें जितना पानी बरसता है, उसका अधिकांश नदी नालों द्वारा समुद्रमें जा मिलता है। यदि यही पानी बड़े बड़े जलाशयों या बांधोंमें संचित कर लिया जाय, तो कृषिको बहुत लाभ पहुँच सकता है। इस परिच्छेदमें जलसंचय करनेकी विधियों पर संक्षेपमें लिखा जायगा।

बांध

नदी नालोंके प्रवाहके मार्गको रोकनेके लिए उचित स्थान पर बांध डालना अत्यन्त लाभकारी है। वर्षाकी तो हमारे लिए आवश्यकता है ही, परन्तु फिर भी हम बांध डालनेके कामको उपेक्षा की दृष्टिसे नहीं देख सकते। भारतवर्षके कई प्रान्तोंमें किसी वर्ष कम पानी बरसता है और किसी वर्ष ज्यादा। लोगोंकी धारणा हो गई है कि पानी बरसाना हमारे हाथमें नहीं है। अल्पांशमें हम

भी इससे सहमत हैं। परन्तु हमारा तो यह दृढ विश्वास है कि वनस्पतिकी वृद्धि कर एक सीमा तक पानी बरसानेमें हम सफल हो सकते हैं। भारतवर्षकी सरकार भी यह बात समझने लगी है और जंगल सुरक्षित रखने और वनस्पतिकी वृद्धि करनेकी ओर उसका ध्यान अधिकाधिक आकर्षित होता जा रहा है। इसके अन्य कई कारण भी हैं, परन्तु वह भी उपेक्षणीय नहीं। यदि वनस्पतिकी वृद्धि करने और जंगलोंको सुरक्षित रखनेसे सरकारको अन्य कई प्रकारके लाभोंकी आशा न होती, तो वह शायद ही इस ओर इतना ध्यान देती!

अति प्राचीन कालसे भारतवासी जल संचयके लाभों से परिचित हैं। भारतके प्राचीन ग्रंथोंमें तालाब आदि जलाशयोंके नाम पाये जाते हैं। प्राचीन कालसे भारतीय राजा महाराजा और धनी मानी तालाब बनवाना अपना पवित्र कर्तव्य (धर्म) मानते आये हैं। महाभारतमें एक स्थान पर नारदमुनिने धर्मराजसे पूछा है कि तेरे देशमें काफी जलाशय तो हैं? अस्तु। मुसलमानोंके शासन कालमें भी जल संचयकी ओर ध्यान दिया गया था। मुसलमान शासकोंने गंगा नदीका जल नहरों द्वारा दूर

दूरके प्रदेशोंमें पहुँचाया था। भारतवर्षमें स्थान स्थान पर प्राचीन तालाबोंके चिन्ह पाये जाते हैं। आधुनिक कालमें भी देशी राजा इस पर विशेष ध्यान रखते हैं। परन्तु हमारी अँगरेज़ सरकार इस पर जितना चाहिये उतना ध्यान नहीं देती। फिर भी अँगरेजी राज्यमें कई नहरें बनवाई गई हैं, जिनसे हज़ारों एकड़ जमीन सींची जाती है।

तालाबोंके सम्बंधमें तो हमको कुछ नहीं कहना है; कारण कि उनमें तो वर्षाका पानी इकट्ठा हो जाता है। परन्तु नहरोंकी बात इससे जुदी है। नदीमें बांध डालकर दूसरी तरफ पानी ले जानेसे कभी कभी ऐसा होता है कि बाँधके नीचेके गाँवोंमें पानीकी कमी हो जाती है और नहरोंके बन जानेसे कई बार ऐसा होता है कि नदीमें पर्याप्त पानीनहीं रहता। अतएव नहर और बाँध बनवानेका काम विशेष दक्षतासे करना चाहिये।

भारत सरकारने अाब पाशीका (इरिगेशन) विभाग खोल रखा है। इस विभागके दो उद्देश हैं—वर्षाके पानीका संचय करना और नहरों द्वारा दूरके प्रदेशोंको पानी पहुँचाना। इस विभागका उद्देश स्तुत्य है। इस विभागसे पुष्कल लाभ पहुँचा है और पहुँच रहा है। तथापि पानीकी कमीके

कारण इससे उतना लाभ नहीं पहुँचा है, जितना कि पहुँचना चाहिये। हमारे मतसे कई स्थानोंमें वनस्पतिकी वृद्धि करनेसे कम खर्चसे पुष्कल लाभ पहुँच सकता है।*

सोते

अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि कुए, नदी, नाले और तालावोंमें पानी कहांसे आता है? पाठक यह बात तो भले प्रकार जानते होंगे कि कुओंमें सोतों द्वारा जल आता है।

तालाब दो प्रकारके होते हैं। एक प्रकारके तालाबोंमें तो वर्षाका पानी इकट्ठा होता रहता है

---

* एलेक्झेंडर व्हैन हम्बोल्ट सन् १८०२ में वेनेजुएलाकी एराग्वुवा नदीको देखने गये थे। आस पासके पहाड़ोंके पानीके एकत्रित हो जानेसे एक स्थान पर एक तालाब सा बन गया था। इस सरोवरकी मछलियोंसे वहाँके लोगोंका निर्वाह होता था। जंगल कट जानेसे धीरे धीरे तालाबका पानी घटने लगा, जिससे मछलियाँ कम हो गईं। यह देख कर लोग चिन्तित हुए। उक्त महोदय चट समझ गये कि जंगलका नाश ही इसका कारण है। आपने जंगलकी रक्षा और वृद्धिकी ओर ध्यान दिलाया। फल यह हुआ कि सन् १८२५ में तालाबमें पानी फिर पहलेके समान भर गया।

और दूसरे प्रकारके तालाबोंमें वर्षाका पानी तो इकट्ठा होता ही है, परन्तु साथ ही सोतोंसे भी पानी आता रहता है। दूसरे प्रकारके तालाब ही अच्छे हैं कारण कि वर्षाका पानी तो जल्दी सूख जाता है, परन्तु सोतोंके पानीसे पानीकी कमी नहीं होने पाती। नालोंको हम बहनेवाले झरने कह सकते हैं। नदीका उद्गम भी झरनोंसे ही होता है और उसमें मिलनेवाले नालों और प्रवाहों-का जल भी तो झरनों से ही आता है।

अब यह देखेंगे कि सोते या झरने कैसे पैदा होते हैं। जब तक किसी ऊंचे स्थानपर पानीका संचय न होगा, झरनोंकी उत्पत्ति कदापि न होगी। एक बरतनमें पानी भरकर उसे किसी उंचे स्थानपर रख दीजिये, इस बरतनमें छेद करनेसे पानी झरने लगेगा। यह भी एक प्रकारका झरना ही है। पृथ्वी-का ठोस भाग चट्टानोंकी तहों से बना है। इन तहोंकी दरारों और चीरोंमेंसे ऊंचे स्थानका पानी, बहकर आता है और बाहर निकलनेका मार्ग मिलते ही वह झरनेके रूपमें बहने लगता है।

कई स्थानों पर आस पास ऊंची जगहें न होनेपर भी ऊंचाई पर झरने पाये जाते हैं। इसका कारण यह है कि कहीं न कहीं किसी ऊंचे स्थान

पर पानीका संचय ज़रूर है और उसकी बदौलत वहां झरना निकल आया है। पानीका धर्म है कि वह अपनी ऊंचाई सदा बराबर बनाये रखता है। अर्थात् किसी ऊंचे स्थानपर पानीका संचय रखकर उसमेंसे पानी नली द्वारा कितनी ही दूरी पर क्यों न ले जाया जाय, परन्तु वह उतनी ही ऊंचाई तक चढ़ सकेगा जितनी ऊंचाईपर कि जलका संचय स्थित है। साथकी आकृतिमें अ एक पात्र है जिसकी नलीमें ब नली लगाई गई है। यह नली कितनी ही ऊंची क्यों न हो परन्तु यदि पात्रमें पानी भरा जायगा तो अ और ब में पानीकी ऊंचाई बराबर होगी। दोनों पात्रोंके आकारमें जमीन आसमानका अन्तर ही क्यों न हो, परन्तु पानी अपना धर्म—कदापि नहीं छोड़ेगा। इस चित्रमें अ पात्र बड़ा और ब नली पतली है। परन्तु फिर भी पानीकी ऊंचाई दोनोंमें बराबर है। जमीनके जल संचयको भी यही नियम लागू होता है। अतएव किसी ऊंचे स्थान पर झरनेको देखकर आश्चर्य न करना चाहिये।

झरनेके लिए ऊंचे स्थान पर जलसंचयका होना अनिवार्य है और पानी तो वर्षासे ही प्राप्त होता है। इसलिए यह अत्यन्त जरूरी है कि ऊंचे प्रदेशों
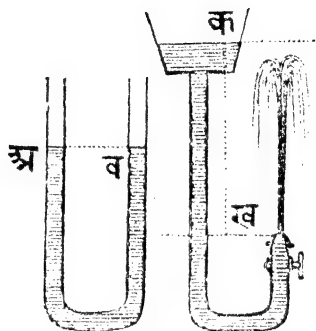
चित्र ४ चित्र ५

चित्र ४—एक यू नली या तिजक नलीमें पानी भरिये, दोनों शाखाओंमें पानी बराबर चढ़ेगा।

चित्र ५—यदि एक शाखा ऊंची हुई और दूसरी छोटी तो पानी ऊंची शाखामेंसे लगातार डाले जाने पर छोटीमेंसे निकलकर गिरने लगेगा।
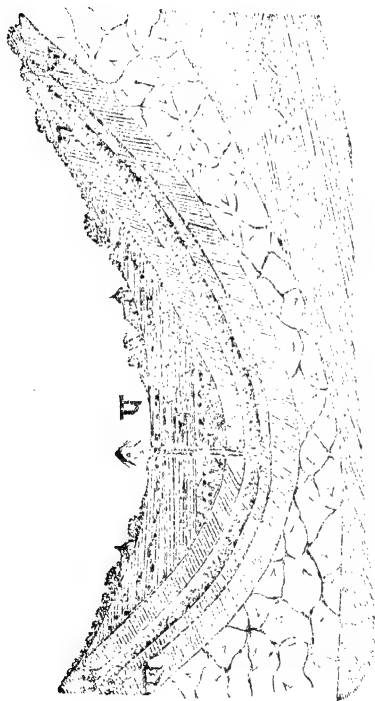
चित्र ६—किसी ऊंचे स्थानसे पानी पृथ्वीमें रमता हुए जब ऐसे नीचे स्थान पर पहुंच जाता है कि जहां उसका और नीचे उतरना असम्भव होता है तो वह ऊपरको चढ़ने लगता है। कुए खोदनेमें ऊपर चढ़नेका मार्ग कृत्रिम रीतिसे बनाया जाता है, अतएव सोते फूट निकलते हैं; जब मार्ग प्राकृतिक होता है तो झरना बन जाता है। (देखिये पृष्ठ ६२, ६३)

पर बरसा हुआ पानी बहकर नदी नालोंमें से होकर समुद्रमें न जानेपावे। जहाँ तक हो सके वह जमीनमें उतारा जाय। वनस्पति यह काम किस प्रकार करती है, इसपर विचार करना ज़रूरी है।

वनस्पतिकी क्रिया

पर्वत आदि ऊंचे स्थानों पर जितना पानी बरसता है वह सबका सब बह कर समुद्रमें चला जाता है। जमीन उसको सोख नहीं पाती। इसका कारण यह है कि पर्वतोंमें छिद्र नहीं होते और मट्टीके अभावके कारण उनका पृष्ठभाग जल शोषक नहीं होता। और जमीन पथरीली होनेसे जितना पानी बरसता है, वह सब बड़े वेगसे बह कर समुद्रमें जा मिलता है। यदि चट्टानोंमें दरारें छिद्र आदि हुए भी, तो पानीके मार्गमें बिलकुल रुकावट न होनेसे, उसे जमीनके अंदर घुसनेको अवकाश नहीं मिलता; इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि पर्वत दरार, छेद आदिसे पोला हो, वह जितना ही अधिक पोला होगा, उतना ही अच्छा है। इसके अलावा पहाड़ पर जलशोषक मिट्टीका होना भी बहुत ज़रूरी है। एवं पानीके वेगको कम करने या रोकनेके साधनोंका होना भी आवश्यक है। इन उद्देशोंकी सिद्धिके लिए वनस्पति एक उत्तम साधन है।

मूसला जड़ वाले पौधोंकी जड़ें भोजनकी तलाशमें जमीनमें बहुत गहरी जाती हैं। पर्वतों पर ऐसे झाड़ लगानेसे उनमें बहुत गहराई तक छेद हो जाते हैं। झांकरा जड़ वाले झाड़ोंकी जड़ें जमीनमें बहुत गहरी नहीं पैठतीं; परंतु उनकी अनेक छोटी छोटी जड़ें जमीनमें दूर तक जालकी तरह फैली रहती हैं। ऐसे झाड़ लगानेसे पहाड़ पोला भी होता है और उसके पृष्ठभाग पर मट्टी भी बढ़ती जाती है। पानी, वर्षा आदि भौतिक शक्तियों द्वारा चट्टानें टूट टूट कर मट्टीमें बदल जाती हैं। वृक्षोंकी जड़ें, ठूंठ आदिके कारण यह मट्टी पानीके साथ बह कर नहीं जाने पाती—पर्वत पर ही रह जाती है। इसके अलावा वनस्पतिके पत्ते आदि गिर कर वहीं सड़ते रहते हैं; जिससे पर्वतका ऊपरी भाग स्पंजके समान जल शोषक हो जाता है। वनस्पतिसे भरी हुई जमीनमें से तरीका वाष्पीभवन भी कम होता है, कारण कि वह वृक्षोंके पत्तोंसे ढकी रहती है। प्रयोगों द्वारा सिद्ध हो चुका है कि जितने समयमें खुली जमीनकी १०० भाग तरीका वाष्पी भवन होता है उतने ही समयमें वृक्षोंसे ढकी हुई जमीनकी ३८ भाग तरी भाप बन कर हवामें मिलने पाती है। और यदि जमीन छोटे

छोटे पौदोंसे ढकी हो, तो यह परिमाण १५ ही रह जाता है।

पौदेका तना पानीके बहावके मार्गमें रुकावट डालता है जिससे पानी वेगसे नहीं बहने पाता। फल यह होता है कि जमीन ज़्यादा पानी सोख सकती है। वनस्पति एक और रीतिसे जमीनको पानी सोखनेमें सहायता पहुँचाती है। वर्षाका पानी पहले पत्तों पर गिरता है और तब जमीन पर टपकता है, जिससे पानी जमीनमें प्रवेश कर सकता है। इस प्रकार वनस्पति जल संचय करनेमें बड़ी मदद पहुँचाती है।

सरकारका आबपाशीका विभाग नदी नालोंमें बाँध डालकर नहरों द्वारा दूर दूर तक पानी पहुँचाता है और तालाबोंमें पानी इकट्ठा करता है। परन्तु अकसर पानीकी कमी हो जानेसे नहरों और तालाबोंसे उतना लाभ नहीं होता। यदि उक्त विभाग पहाड़ों पर वनस्पति लगानेकी ओर ध्यान दे तो बहुत कुछ लाभ हो सकता है।

भारतवर्षके उन प्रदेशोंमें जहाँ नियमित समय पर ही वर्षा होती है, पर्वतोंसे कितना फायदा होता है यह बात किसीसे छिपी नहीं। यदि भारतवर्ष समथल होता, तो वर्षाका सबका सब पानी

या तो बह कर समुद्रमें जा मिलता या जमीनमें प्रवेश कर बहुत गहरा उतर जाता। और तब वह झरनोंके रूपमें कदापि प्रकट नहीं होता। कुएं खोदने पर पानी तो ज़रूर निकलता, परन्तु वह इतने गहरे होते कि यंत्रों द्वारा पानी ऊपर उठाकर सिंचाईकी फसलें बोना बहुत ही कठिन हो जाता। बीजापुर, धारवाड़ और मारवाड़में कुए बहुत ही गहरे होते हैं।

चालीस पचास वर्ष पहले जिन झरनोंसे बहुत पानी आता था वह अब निरुपयोगी हो गये हैं। इसका एक कारण वनस्पतिका नाश ही है। वर्षाकी कमी भी इसका कारण माना जा सकता है, परन्तु यह गौण है। आज भी भारतवर्षमें साल भरमें जितना पानी बरसता है उसका २० वाँ भाग भी यदि संचित कर लिया जाय, तो पानीकी कमीका अनुभव कदापि नहीं हो सकता। नीचेके उदाहरण से यह बात अच्छी तरह समझमें आजायगी।

कल्पना कीजिये कि किसी स्थान पर २५ इंच पानी बरसता है। अब हम यह देखेंगे कि एक एकड़ जमीन एक सालमें कितना पानी संचित कर सकती है।

एक एकड़ जमीनमें ४८४० वर्ग गज या ४३५६० वर्ग फुट होते हैं। यदि मान लिया जाय कि किसी जमीनमें न तो पानी अन्दर ही उतरता है और न भाप बनकर उड़ता ही है तो एक सालमें एक एकड़ जमीन पर २५ इंच गहरा पानी भर जायगा। अर्थात् $\frac{२५}{१२} \times \frac{४३५६०}{} = ९०७५०$ घन फुट पानी भर जायगा। एक घन फुट पानीका वजन ६२.५ पौंड होता है। इस हिसाबसे उस जमीनमें ५६७१८७५ पौंड पानी भरेगा। इतने पानीका थोड़ा सा भाग भी जमीनमें प्रवेश कर पाये तो पुष्कल लाभ हो सकता है।

ऊपरके विवेचनसे पाठक यह बात भले प्रकार समझ गये होंगे कि भारतकी तीन आवश्यकताओंको पूर्ण करनेमें वनस्पति कितनी सहायता पहुंचाती हैं।

वनस्पतिसे अन्य लाभ

ओस

रतवर्षमें दो प्रकारकी फसलें होती हैं—खरीफ और रबी। खरीफकी फसलें तो वर्षाके पानी पर ही निर्भर होती हैं; परन्तु रबीकी फसलें खेतकी मट्टीमें संचित किए हुए जल पर अवलम्बित रहती हैं। रबीकी फसलोंको ओससे भी बहुत लाभ पहुँचता है। ओस पड़नेमें भी वनस्पति अधिकांशमें सहायक होती है।

ओस पड़नेके लिए दो साधनोंकी आवश्यकता होती है—पानीकी भाप और शीतलता। वायुमें जलवाष्प न्यूनाधिक परिमाणमें सदा वर्तमान रहती है। इसीसे ओसकी उत्पत्ति होती है। पानी बरसनेके लिए हवामें जितनी भापका होना जरूरी है, उतनी भाप ओसके लिए आवश्यक नहीं होती। ज़मीनकी तरी और नदी नालों और तालाबोंके

जलका वाष्पीभवन होनेसे वायुमें जितनी भाप मिली रहती है, उतनी ही ओसके लिए काफी है। ऊपर दिखा आये हैं कि भापको जल रूपमें परिवर्तित करनेके लिए किस प्रकारकी परिस्थिति आवश्यक होती है। ओसके लिए भी वैसी परिस्थितिका होना अनिवार्य्य है। शीतलताका परिमाण समान रहने पर हवामें जितनी ही अधिक भाप होगी, उतनी ही अधिक ओस गिरेगी। परन्तु यदि भाप और शीतका परिमाण अधिक हो, तो अवश्य ही अत्यधिक ओस गिरेगी।

वनस्पति शीतलता और जलवाष्पको उत्पन्न करती है, जिससे ओस गिरनेमें बहुत मदद मिलती है। परन्तु वनस्पतिमें एक और ऐसा गुण है, जिससे ओस पड़नेमें बड़ी मदद मिलती है।

वनस्पतिके उक्त गुण पर विचार करनेके पहले इस बात पर विचार करेंगे कि शीतकालमें ओस क्यों गिरती है और गरमीके मौसममें क्यों नहीं गिरती? किसी गत परिच्छेदमें वर्षाकी उपपत्तिपर विचार करते समय यह बात सप्रयोग बता चुके हैं कि हवामें नियमित उष्णता होने पर वह नियमित परिमाणमें ही भाप रख सकती है। सीमासे

अधिक भाप प्राप्त होते ही, भाप जल रूप धारण कर लेती है। वर्षा ऋतु खतम होनेके बाद हवामें इतनी कम भाप रह जाती है कि वह जल रूपमें परिवर्तित होकर बरस नहीं सकती। परन्तु गरमीके दिनोंमें तो ऐसा होना एक दम असंभव है। तब क्या शीतकालमें जलवाष्प पानीका रूप ग्रहण कर सकती है? शीतकालमें ऐसा होना अधिक संभव नहीं होता। यदि ऐसी स्थिति प्राप्त हो जाय तो फिर ओस न गिरकर पानी ही बरसने लगेगा। तब वर्षा और ओसमें क्या अन्तर है? किसी विशेष भूभाग पर आकाशसे पानीकी बूंदें गिरने लगें, तो हम उसे वर्षा कहते हैं। परन्तु ओस आकाशसे वर्षाकी बूंदोंकी तरह नहीं गिरती। ज़्यादा सरदीके कारण जलवाष्प ठंडे पदार्थों पर बूँदोंके रूपमें जम जाती है; इसे ही ओस कहते हैं।

ओस दो तरह से गिरती है। किसी स्थान विशेषमें जलवाष्पके संचयके अधिक बढ़ जाने और सरदीकी अधिकतासे भूपृष्ठ परकी हवा इतनी भारी हो जाती है कि वह धूंधर जलवाष्पका घन रूप धारण कर लेती है और उसमेंसे पानीके महीन तुषार मंदगतिसे जमीन पर गिरते

रहते हैं। दूसरे प्रकारकी ओस धूंधरका रूप शायद ही धारण करती है। यदा कदाचित् धूंधर गिरती भी है तो वह उतनी घनी नहीं होती; न महीन जल-तुषार ही गिरते हैं। जलवाष्प विशेष पदार्थों पर छोटे छोटे जलकणके रूपमें जम जाती है। दोनों ही प्रकारकी ओसमें जलविन्दु आकाशसे न गिरकर जमीनके पासकी हवामेंसे ही उत्पन्न होते हैं। दोनों ही अवस्थामें ओस विशिष्ट स्थानों पर ही गिरती है।

ओस बननेकी क्रिया समझनेके लिए हम एक ऐसा उदाहरण देते हैं जो प्रत्येक घरमें सहज ही देखा जा सकता है। अकसर प्रत्येक घरमें चूल्हे पर किसी पदार्थको रांधनेके लिए रखकर उस पर ढक्कन रख दिया जाता है। थोड़ी देर बाद इस ढक्कनको उठाकर देखनेसे उसकी तलीमें छोटी छोटी बूँदें जमी हुई देख पड़ेंगी। जो पदार्थ राँधनेके लिए चूल्हे पर चढ़ाया जाता है उसमेंकी तरी भाप बनकर ऊपरको उठने लगती है। परन्तु बरतनके मुख पर जो ढक्कन लगा होता है, वह उसे बाहर नहीं निकलने देता। ढक्कन ठंडा होता है। इसलिए भाप इसकी तलीसे छूते ही जल कणोंका रूप धारण कर लेती है। काँच पर फूंक मारनेसे

वह कुछ समयके लिए धुँधला हो जाता है। इसका भी यही कारण है।

शीत कालमें हवामें एक निश्चित सीमा तक जल वाष्प मौजूद रहती है। अतएव उसे जलकण-में बदलनेके लिए सिर्फ ठंडकी जरूरत होती है; उस ऋतुमें इतनी ठंड रातके समय अवश्य ही रहती है। गरमीके दिनोंमें सूर्यसे अधिक उष्णता प्राप्त होती है और रातकी अपेक्षा दिन बड़ा होता है। इसलिए दिन भरमें जितनी उष्णता प्राप्त होती है; उतनी रात भरमें परावर्तन द्वारा समाप्त नहीं हो पाती। अर्थात् इस ऋतुमें पदार्थ दिनमें बहुत गरम हो जाते हैं परन्तु रातमें वह पूरी तरहसे ठंडे नहीं हो पाते। इसीलिए गरमीके मौसममें दिन पर दिन गरमी बढ़ती जाती है और यही कारण है कि ओस नहीं गिरती। तथापि इस ऋतुमें भी कृत्रिम उपाय द्वारा ओस बनाई जा सकती है। किसी काचके बरतनको साफ पोंछ कर उसमें बर्फ रख देनेसे थोड़ी ही देरमें बरतनकी बाहरकी तरफ छोटी छोटी पानीकी बूँदें जम जायंगी। इसका कारण यह है कि बर्फसे पात्रकी उष्णता इतनी घट जाती है कि उसके आसपासकी वायु मेंकी जलवाष्प जल रूपमें परिवर्तित होकर पात्र

पर जम जाती है। परन्तु गरमीके दिनोंमें नैसर्गिक रीतिसे इतनी सरदी उत्पन्न नहीं होती कि जिससे ओस गिरने लगे।

शीतकालका हाल बिलकुल निराला है। इन दिनों सूर्यसे उतनी उष्णता प्राप्त नहीं होती। दिनकी अपेक्षा रात बड़ी होती है। अतएव दिन भरमें सूर्यसे जितनी उष्णता प्राप्त होती है उसका परावर्तन करनेके लिए पर्याप्त अवकाश मिल जाता है। अर्थात् पृथ्वी और उस परके पदार्थ दिन भरमें थोड़ेसे गरम होते हैं और रात बड़ी होनेसे वह ज्यादा ठंडे हो जाते हैं। और यही कारण है कि इन ठंडे पदार्थोंके संसर्गसे हवाकी भापकी ओस बन जाती है। परन्तु यह नियम सर्वत्र लागू नहीं होता। अकसर देखा जाता है कि कुछ पदार्थों पर ओस गिरती है और कुछ पर नहीं गिरती। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि शीतकालमें भी कुछ पदार्थ इतने ठंडे नहीं होते कि उन पर ओस गिरे। थोड़ेसे ही पदार्थ ऐसे हैं जो इतने ठंडे हो जाते हैं कि उनपर ओस गिर सके।

अब यहाँ यह देखेंगे कि किन किन पदार्थों पर ओस गिरती है। पदार्थ दो प्रकारके होते हैं— उष्णताके वाहक और कुवाहक। जो पदार्थ

कुवाहक हैं उनमेंसे भी उष्णता तो जरूर जाती है किन्तु अति मंद गति से। सभी वाहक पदार्थों-मेंसे भी उष्णता समान वेगसे प्रवाहित नहीं होती। कुछ पदार्थोंमें वह धीरे धीरे चलती है और कुछ पदार्थोंमें शीघ्र गतिसे। अतएव वाहक पदार्थ दो भागोंमें बाँटे जा सकते हैं—मंद-वाहक और शीघ्रवाहक।

जिन पदार्थोंमें उष्णता मंद गतिसे जाती है वह जलदी गरम भी नहीं होते। ऊन, बाल, लकड़ी आदि पदार्थ उष्णताके कुवाहक हैं; अतएव यह जलदी गरम नहीं होते। सभी प्रकारकी धातु उष्णतावाहक हैं; अतएव जलदी गरम हो जाती हैं। घरोंमें इस बातकी सत्यता रोज़ नज़र आती है। लोहेकी संड़सी या चिमटेका एक सिरा गरम होने पर दूसरा भी गरम हो जाता है। परन्तु लकड़ीका एक सिरा जलते रहने पर भी दूसरा उतना गरम नहीं होता और यदि लकड़ी अधिक लम्बी हुई तो ठंडा ही बना रहता है।

पदार्थोंको छूनेसे ही यह बात मालूम हो जाती है कि कौनसे पदार्थ वाहक हैं और कौनसे कुवाहक। सवेरे उठते ही कुछ पदार्थोंको हाथ लगानेसे वह बहुत ही ठंडे मालूम होते हैं और ऊनके समान

कुछ पदार्थ गरम मालूम होते हैं। असलमें दोनों ही प्रकारके पदार्थ बहुत देर तक बाहर पड़े रहे हैं। अतएव यह कोई कारण नहीं कि एक पदार्थ ठंडा हो जाय और दूसरा गरम रहे। स्पर्शेन्द्रियसे यह बात नहीं जानी जा सकती कि कौन पदार्थ ठंडा है और कौन गरम। यह परीक्षा तो ताप मापक यंत्रसे ही की जा सकती है। यदि दोनों पदार्थोंका तापक्रम इस यंत्रसे नापा जाय, तो वह बराबर ही मिलेगा। तब हमारे हाथको एक पदार्थ ठंडा और दूसरा गरम क्यों मालूम होता है? इसका कारण वही पदार्थोंकी वाहकता और कुवाहकता है। धातु उष्णताका शीघ्रवाहक है। इसलिए धातुके बरतनको हाथ लगाते ही हाथकी उष्णता खिंचने लगती है, जिससे बरतन ठंडा मालूम होता है। परन्तु ऊन कुवाहक होनेसे छूने पर वह हाथकी उष्णता खींचता नहीं और यही कारण है कि वह गरम मालूम होता है।

इसी प्रकार जो पदार्थ वाहक होते हैं, वह जल्दी ठंडे हो जाते हैं और जो कुवाहक होते हैं वह जल्दी ठंडे भी नहीं होते* । उष्णता वाहक

---

* ठंडे होनेमें कुवाहकता या सुवाहकताका ही प्रभाव नहीं पड़ता; ताप विसर्जन शक्ति Radiating power

पदार्थ ठंडके दिनोंमें ज्यादा ठंडे हो जाते हैं और इन्हीं पदार्थोंमेंसे जो बहुत ही ठंडे हो जाते हैं उन्हीं पर ओस गिरती है। वृक्ष भी ठंडे जलदी हो जाते हैं। इसी गुणके कारण वनस्पति पर ओस अधिक पड़ती है। ठंडके दिनोंमें मट्टी, लकड़ी, पत्थर आदि पर ओस कम पड़ती है; परन्तु वृक्षोंके पत्ते और घास आदि पर ओसके कण ज़्यादा नज़र आते हैं। जंगलों और खेतोंमें जहाँ वनस्पति अधिक होती है ओस भी ज़्यादा पड़ती है। इससे यह बात निर्विवाद सिद्ध हो जाती है कि देशमें जितनी ही अधिक वनस्पति होगी ओस भी उतनी ही अधिक गिरेगी।

ज़मीनका बन्धन—वृक्षोंसे एक और महत्वका उपयोग होता है। नदी नालों और प्रवाहोंमें बाढ़ आनेसे प्रतिवर्ष हजारों रुपयोंका नुकसान होता है और सैकड़ों प्राणी अकाल ही कालके गालमें चले जाते हैं। वृक्ष लगानेसे बाढ़का भय बहुत कम

का भी प्रभाव पड़ता है। अच्छे परावर्तक खराब विसर्जक होते हैं और ख़राब परावर्तक अच्छे विसर्जक। धातु भी बुरे विसर्जक होते हैं; अतएव देरमें ठंडे होते हैं और वनस्पति आदिकी अपेक्षा उनपर ओस बहुत कम जमती है। ठंडे होने की गति विशेष तापपर भी निर्भर है। —सं०

किया जा सकता है। ऊंचे स्थानोंपर वनस्पति न होनेसे पानीके प्रवाहके मार्गमें रुकावट नहीं पड़ती, जिससे वह बड़े वेगसे नीचेकी ओरको बह जाता है और उसे जमीनमें प्रवेश करनेका अवकाश ही नहीं मिलता। फल यह होता है कि पहाड़ोंकी मट्टी धुलकर पानीके साथ बह जाती है, जिससे कुछ वर्षों बाद चट्टानें बिलकुल नंगी हो जाती हैं। और तब उस पर घास आदि जमने नहीं पाती। यह पानी पर्वतको ही नुकसान नहीं पहुँचाता, वरन मानव प्राणियोंको भी असह्य दुःख देता है। पर्वतों परसे वर्षाका पानी बड़े वेगसे नीचे उतरता है, जिससे नदी नाले उग्र रूप धारण कर लेते हैं। यही पानी तब गाँव, पुल, खेत आदिको नष्ट करता हुआ समुद्रमें जा मिलता है। इससे हर-साल लाखों रुपयोंका नुकसान होता है और हजारों प्राणी डूबकर मर जाते हैं। पानीके बहावके साथ पर्वत परसे कंकड़ पत्थर वगैरा बहकर पर्वतके नीचेके खेतोंमें फैलकर उन्हें निरुपयोगी बना देते हैं और खड़ी फसलको नष्ट कर डालता है। पानीके प्रबल वेगके कारण खेतोंकी महीन मट्टी बहकर चली जाती है; जिससे खेत खराब हो जाते हैं। यदि पानी किसी तालाबमें जाकर गिरता है, तो

सारा तालाब रेत मट्टी कंकड़से भर जाता है, जिससे धीरे धीरे वह बहुत ही छिछले हो जाते हैं। नदियोंकी तलीमें भी मट्टी भर जाती है। फल यह होता है कि जिस जगह पहले छोटे छोटे जहाज आ जा सकते थे, वहाँ छोटी छोटी नौकाओंके लिए भी मार्ग नहीं रह जाता है।

पर्वतोंपर वनस्पति न होनेसे जो नुकसान होता है, उसपर संक्षेपमें विचार कर आये हैं। यदि पर्वत छोटे पौदोंसे आच्छादित हो, तो उक्त प्रकारकी हानियाँ मर्यादित हो जाती हैं। वनस्पति पानीके प्रवाहकी गतिमें रुकावट नहीं डालती, वरन वेग कम हो जानेसे कंकड़ पत्थरोंका लुढ़कना भी बंद हो जाता है। *

नदी नालोंके किनारेकी मट्टी बहुत ही उपजाऊ होती है। यदि इनके किनारोंपर पौदे न होंगे, तो तटपरकी मट्टी बहावसे कटकर बह जायगी। वनस्पति लगानेसे तटकी मट्टीका कटना बंद हो सकता है।

---

* फ्रांसमें ड्रोन नदीकी बाढ़से बहुत नुकसान होता रहा है। परन्तु पर्वत पर वनस्पति लगानेसे कम खर्चमें इष्ट सिद्ध हो गया है। अब बाढ़से बहुत कम नुकसान होता है।

खादकी उत्पत्ति

वनस्पतिके पत्तों और कोमल शाखाओंका खाद बहुत अच्छा होता है। बगीचोंके लिए यह खाद सर्वोत्तम माना गया है। वनस्पतिके पत्ते प्रतिवर्ष झड़ जाते हैं। कुछ वृक्षोंके पत्ते तो पतझड़के मौसममें सबके सब गिर पड़ते हैं और कुछ वृक्षोंके पत्ते बारहों महीने गिरते रहते हैं। जिन वृक्षोंके पत्ते पतझड़में गिरते हैं उनको 'गलितपत्र' (Deciduous) और जिनके पत्ते धीरे धीरे रहते हैं उन्हें 'सदा-पत्री' (evergreen) नाम दिया गया है।

प्रतिवर्ष प्रत्येक वृक्षसे कई मन पत्ते और फल जमीन पर गिरते हैं। यदि मान लिया जाय कि एक एकड़ जमीन पर १५ वृक्ष हैं और प्रत्येक वृक्षसे २०० पौंड पत्ते फल फूल आदि गिरते हैं। तो एक एकड़ जमीन पर प्रतिवर्ष ३२०० पौंड पत्ते आदि गिरेंगे।

पत्ते, फल आदिके सड़नेसे बना हुआ खाद उत्तम प्रकारका माना जाता है। खनिज खादोंकी अपेक्षा जैव या वानस्पतिक खाद विशेष लाभदायक होता है। इसके अलावा वृक्षके पत्तोंमें पोटाश और सोडाका क्षार अधिक परिमाणमें रहता है।

यह क्षार फसलके लिए अत्यन्त आवश्यक है। पत्तोंमें पोटाशका क्षार इतना अधिक होता हैकि पत्तोंको जलाकर पोटाश तैयार किया जाता है। वृक्षके काष्ठमें खादका अंश नहीं रहता। न काष्ठ जलदी सड़ता ही है। लकड़ी जलानेसे बहुत कम राख बनती है। मुख्य खाद पत्तोंसे ही बनता है और वह बहुत होते हैं।

जिस मौसममें खादकी ज़रूरत होती है, उसी मौसममें पत्ते भी गिरते हैं। खरीफ और रबीकी फसलें माघ फालगुन तक निकल जाती हैं, और तब दूसरे सालकी फसलोंके लिए जुताई शुरू की जाती है। इसी मौसममें पत्ते गिरते भी हैं। भारतवर्षमें पत्तोंका उपयोग बहुत कम किया जाता है। घास आदि सड़ कर भी जमीनको खाद देते हैं; परन्तु उससे उतना लाभ नहीं होता।

बड़े वृक्षोंकी जड़ें जमीनमें गहरी जाती हैं। अतएव वह पोषक द्रव्यको जमीनमेंसे खींचकर पत्तों तक पहुँचा देती हैं। यही पत्ते पुनः जमीन पर गिरकर उसको उपजाऊ बना देते हैं। एवं मिट्टीकी उत्पत्ति कर उसका संचय बढ़ाते जाते हैं। जिस पर्वत पर कम मिट्टी होती है, उस पर सबसे पहले घास आदि कम ऊंची बढ़नेवाली

वनस्पति लगाई जानी चाहिये, जिससे वर्षा वायु और उष्णताके व्यापारसे चट्टानोंसे जो मट्टी बनती है, उसे उक्त प्रकारकी वनस्पति अपनी जड़ोंसे बाँध रखेगी और बहकर जाने न देगी। वनस्पतिकी जड़ें भी चट्टानोंका चूर्ण करनेमें मदद पहुँचाती हैं। इस प्रकार धीरे धीरे मट्टीका संचय बढ़ता जाता है, जिससे वह बड़े वृक्ष लगाने योग्य हो जाती है। और तब धीरे धीरे पहाड़ परकी जमीन खेती करने योग्य हो जाती है।

हवाकी शुद्धि

हवा शुद्ध करनेमें भी वनस्पतिसे बहुत सहायता मिलती है। वातावरणमें मुख्यतः ओषजन और नत्रजन निश्चित परिमाणमें मिले रहते हैं। नत्रजन निरुपयोगी वायु है। ओषजन वायु ही प्राणियोंके लिए उपयोगी है। यह गंदगीका नाशक है। यह रासायनिक रीतिसे गंदगीके नत्रजनीय द्रव्योंसे मिलकर उनका ओषिद बना डालता है, जिससे फिर किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुंचती।

अक्सर लोग कहते हैं कि कुओंकी अपेक्षा नदी नालोंका पानी पीनेके लिए अच्छा होता है। और यह बात सच भी है। कुएके पानीमें आंगारक-द्रव्य मिले रहते हैं। काफी ओषजन न मिलनेके

कारण वह शुद्ध नहीं हो पाता। क्योंकि कुएका पानी स्तब्ध रहता है और उसका बहुत कम भाग ओषजनसे संलग्न हो पाता है। फल यह होता है कि केवल पृष्ठ भागका पानी ही शुद्ध हो पाता है। शेष पानी अशुद्ध ही बना रहता है। नदी नालोंके पानीका बहुत बड़ा भाग हवासे संलग्न होता रहता है; जिससे पानी शुद्ध हो जाता है। इसके अलावा कुएकी हवा बंद रहनेसे उसमें ओषजनका परिमाण भी कम रहता है। परन्तु नदी नालों परकी वायु-खुली रहती है, अतएव उसमें इस वायुका परिमाण बहुत अधिक रहता है।

ओषजन वायु प्राणियोंके शरीरका रक्त भी शुद्ध करती है। प्रत्येक बार श्वासके साथ ओषजन वायु शरीरमें प्रवेश करती है। फेफड़े-में पहुँचकर वह हृदयके अशुद्ध रक्तको शुद्ध करती है। ओषजनके संयोगसे अशुद्ध रक्तमेंका कर्बन कार्बोनिक एसिड बन जाता है। यह वायु तब उच्छ्वास द्वारा शरीरके बाहर फेंक दी जाती है। यह क्रिया प्रत्येक श्वासोच्छ्वासके वक्त जारी रहती है। अतएव श्वासोच्छ्वासके लिए शुद्ध हवाकी अत्यन्त आवश्यकता है। संसारमें असंख्य प्राणी हैं, जो प्रतिक्षण कार्बोनिक एसिड वातावरण

में मिलाते रहते हैं। वातावरणमें इस वायुके परिमाणका बढ़ जाना हानिकारक है। कार्बोनिक एसिड गैसका परिमाण प्रतिशत २५ होते ही संसार में एक भी प्राणी जिन्दा न रह सकेगा।

शुद्ध हवामें ओषजन वायुका परिमाण अधिक होना चाहिये और कार्बोनिक एसिड वायुका कम। किसी गत परिच्छेदमें हम लिख आये हैं कि वनस्पति कार्बोनिक एसिड गैस ग्रहण करती और ओषजन छोड़ती रहती हैं। वह यह काम सूर्यके प्रकाशकी सहायतासे ही करती हैं। अतएव वातावरणमें ओषजन और कार्बोनिक एसिड गैस का परिमाण घट बढ़ नहीं पाता। यह क्रिया दिन का ही होती रहती है। रातको वनस्पति वातावरणमेंसे कुछ ओषजन वायु ग्रहण कर कर्बन छोड़ती है। यही कारण है कि रातको झाड़के नीचेकी और आस पासकी वायु अशुद्ध रहती है। इसीसे रातको झाड़के नीचे सोना हानिकारक है।

वनस्पति एक और रीतिसे मानव प्राणीका हितसाधन करती है। जहाँ मनुष्य रहते हैं वहां गंदगी भी ज्यादा फैली रहती है। वर्षाके पानीके साथ यह गंदगी कुओं और तालाबोंमें पहुँचकर उनके पानीको खराब कर डालती है। परन्तु

वनस्पति लगा देनेसे यह भय नहीं रहता। क्योंकि वनस्पति इन हानिकारक पदार्थोंको अपने निजके पोषणके लिए सोख लेती हैं; जिससे ज़मीनके अन्दर घुसा हुआ पानी शुद्ध हो जाता है।

ऊपरके विवेचनसे पाठक यह बात भली भाँति समझ गये होंगे कि वनस्पति और प्राणीमें चोलीदामनका सा सम्बंध है। प्राणियों द्वारा फेंके हुए मल मूत्र, कार्बोनिक एसिड आदि पदार्थ वनस्पतिका भोजन है, एवं वनस्पति द्वारा फेंके हुए फल, फूल, ओषजन आदि पदार्थ प्राणियों के खाद्य पदार्थ हैं। सारांशमें यह नहीं बताया जा सकता कि वनस्पति प्राणियोंके हितके लिए बनाई गई हैं या प्राणी वनस्पति के हितके लिए बनाये गये हैं।

रुक्ष वायु प्राणियोंके लिए एकदम हानिकारक है। रुक्ष हवा वाले स्थानोंमें वनस्पति भी नहीं बढ़ सकती। ऐसी हवाको हितकारक बनानेके लिए वनस्पति ही एक उत्तम साधन है।

वायुका प्रतिबंध

वनस्पतिसे वायुके मार्गमें भी रुकावट पहुँचती है। किसी तरी युत स्थान पर स्तब्ध हवाके होनेसे बाष्पीभवन कम होता है। क्योंकि जितनी तरी-

की भाप बनेगी, वह जमीनके पृष्ठभागकी वायुमें मिलकर वहीं बनी रहेगी। जिससे धीरे धीरे आसपासकी वायु अधिकाधिक आर्द्र होती जायगी और तब वाष्पीभवनकी शक्ति भी क्रम क्रमसे घट जायगी। यदि इस भूभाग पर शुष्क हवा बहती रहेगी तो वाष्पीभवन जोरोंसे होने लगेगा, जिससे जमीन सूख जायगी, यही नियम तालाबोंको भी लागू होता है। जिस तालाब परसे रूक्ष हवा हमेशा बहती रहती है वह जल्दी सूख जाता है। तालाबोंके किनारे झाड़ लगानेसे वाष्पीभवन घटाया जा सकता है।

उद्योग धंधोंकी वृद्धि

वृक्षोंसे अनेक व्यवहारोपयोगी पदार्थ प्राप्त होते हैं। इमारती लकड़ी, नाव, जहाज़ आदिके लिए काष्ठ, लाख, कई प्रकारके रंग आदि अनेक पदार्थ वनस्पतिसे ही प्राप्त होते हैं। पत्थरका कोयला भी वनस्पतिकी कृपासे ही प्राप्त होता है। तेल, ज्वाला ग्राही पदार्थ, फलमूल, औषध आदि वनस्पतिसे ही मिलते हैं।

जंगल संरक्षण

अति प्राचीनकालमें जंगल रक्षित रखे जाते थे या नहीं और उस जमानेमें वनस्पतिकी समृद्धि

कैसी थी आदि बातों पर ही इस परिच्छेदमें विचार किया जायगा।

भूगर्भशास्त्र-काल

भूगर्भशास्त्र वेत्ताओंका मत है कि प्रारंभिक अवस्थामें पृथ्वी पर सिवा वनस्पतिके और कुछ नहीं था। प्राणियोंका कहीं पता न था। लाखों वर्ष पूर्व भारतवर्ष भिन्न भिन्न प्रकारकी वनस्पतिसे परिपूर्ण था। इसके प्रमाण स्वरूप भारतमें कई कोयलेकी खानें पाई जाती हैं और संभव है कि और भी पायी जायँ।

इस कालके बाद, हज़ारों वर्षके परिवर्तनके अनन्तर पृथ्वीने आधुनिक रूप ग्रहण किया। इसी जमानेमें भारतवर्षको भी वर्तमान रूप प्राप्त हुआ। इस जमानेकी अवस्था निश्चय रूपसे जाननेके साधन उपलब्ध नहीं। तथापि यहाँकी जलवायुके सम्बन्धमें अनुमान द्वारा कुछ जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

वनस्पतिकी वृद्धिके लिए निश्चित सीमासे कुछ अधिक उष्णता और तरीकी जरूरत होती है। पहले लिख आये हैं कि हिमालयके सिवा भारतके अन्य प्रान्तोंमें उष्णता अधिक है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि भारतवर्षमें उष्णताकी अनुकूलता

है। अब तरीके सम्बन्धमें विचार करेंगे। दक्षिण भारतका प्रायद्वीप समुद्रसे घिरा हुआ है। अतएव उसका मध्यभाग छोड़कर शेष भागमें खूब पानी बरसता है। एवं साल भर तक हवामें खूब तरी रहती है। भारतवर्षके अनावृष्टिके प्रदेशोंको छोड़कर शेष प्रदेशोंकी वायुमें काफी तरी मौजूद रहती है। अनावृष्टिके प्रदेशमें भी नदी तटके भूभागकी वायुमें काफी तरी रहती है। सारांशमें, भारतवर्षका थोड़ा सा भाग छोड़कर शेष प्रान्तोंमें आर्द्रताकी न्यूनता नहीं है।

इस प्रकार सारे देशमें वनस्पतिकी उत्पत्ति और वृद्धिके लिए अनुकूलता होनेसे अवश्य ही वनस्पतिकी खूब ही वृद्धि हुई होगी। फिर भी इतना अवश्य ही माना जा सकता है कि आनुकूल्यके न्यूनाधिक्यके अनुसार ही वनस्पतिकी समृद्धि हुई होगी।

वेद-काल

आरंभमें जंगली लोगोंकी ही बस्ती रही होगी। इन लोगोंसे जंगलोंके नाशकी आशा नहीं की जा सकती; कारण कि वह खेती करना शायद ही जानते थे और न वह एक स्थान पर ही रहते थे। अतएव उनसे जंगलोंका उतना नाश नहीं होता

था। कृषिके लिए जितना जंगल साफ किया जाता था, वह उन लोगोंके अन्यत्र चले जाते ही पुनः उग आता था।

सभ्यताके अनुयायी मानव और उनके पालतू जानवर ही जंगलोंके दिली दुशमन हैं। वह जहाँ जहाँ जाते हैं जंगलोंको नष्ट कर डालते हैं। स्थायी रूपसे किसी स्थान पर निवास कर कृषि कर्ममें रत रहना ही सभ्यताका चिन्ह माना जाता है। कृषिके लिए जंगल काटकर जमीन तैयार की जाती है। इसके अलावा इमारतोंके लिए भी तो लकड़ीकी जरूरत होती है। पालतू जानवरोंकी उपजीविकाके लिए भी जंगलोंका नाश किया जाता है।

हमारा अनुमान है कि जबसे आर्य लोग भारतमें आकर बसे हैं तभीसे जंगलोंका नाश होना प्रारंभ हुआ है। यही अपने साथ कृषि पद्धति लाये। इन्होंने सबसे पहले नदी तटवर्ती उपजाऊ जमीनपर खेती करना प्रारंभ किया। तथापि इनकी सख्या कम होनेके कारण जंगलोंका ज्यादा नाश नहीं हो पाया। इस जमानेमें आर्य लोग उत्तर भारतमें ही रहते थे। अतएव दक्षिण भारतके जंगल ज्योंके त्यों बने रहे।

आधुनिक विद्वानों और अन्वेषकोंके मतानुसार दश हज़ार वर्षसे इधरका काल ही 'वेदकाल' माना जाता है। वेदोंमें अरण्योंका वर्णन ता नहीं पाया जाता है, परन्तु वनोंमें के आश्रमों और राक्षस आदिके बाहुल्य से अनुमान किया जा सकता है कि उस जमानेमें सारा देश अरण्यमय था।

पौराणिक काल

गत दो हज़ार वर्षोंसे उधरका काल ही पौराणिक काल कहाता है। इस कालमें आर्योंने खूब तरक्की कर ली थी। अनेक राज्य स्थापित हो गये थे। इसी जमानेमें आर्योंने दक्षिण भारतमें प्रवेश किया। कई बड़े बड़े नगर बस गये और आवागमनके सुभीतेके लिए बहुत सा जंगल काट डाला गया। फिर भी जंगल कुछ कम न थे। रामायण और महाभारतमें जंगलोंके वर्णन पाये जाते हैं। दक्षिण भारतका अधिकांश दंडकारण्यसे व्याप्त था। आर्योंके संसर्गसे अनार्योंने भी खूब तरक्की कर ली थी। और उन्होंने भी अनेक राज्य स्थापित कर लिये थे। महाभारतके जमानेमें आर्योंने और भी तरक्की कर ली थी; और बहुत सा जंगल साफ कर डाला था। दंडकारण्यमें भी

विराटने राज्य स्थापित कर लिया था तथापि बचे हुए जंगलका विस्तार भी कुछ कम न रहा था।

ऐतिहासिक काल

दो हज़ार वर्षसे इधरका जमाना ही ऐतिहासिक-काल माना जाता है। इसे तीन भागोंमें बाँट सकते हैं। यह तीन भाग हैं—१ हिन्दू राजाओंका काल (सन् १००० तक). २ मुसलमान राजाओंका काल (सन् १७५७ की प्लासीकी लड़ाई तक) और ३ अंगरेजोंका शासन काल। इस कालमें भी जंगलोंका उत्तरोत्तर नाश ही होता गया। इधर सौ वर्षसे सरकारका ध्यान जंगलकी रक्षाकी ओर आकर्षित हुआ है।

यह नहीं कहा जा सकता कि हिन्दूराजाओंके जमानेमें जंगलोंकी व्याप्ति कितनी थी। ईसाकी चौथी सदीमें फाहियान नामक एक चीनी यात्री भारतवर्षमें आया था। वह अपने प्रवास वर्णनमें लिखता है कि भारतकी आबोहवा समशीतोष्ण है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि इससे दो सदी पहलेसे लगाकर दो सदी बाद तक जंगलोंकी खूब समृद्धि थी।

मुसलमानोंके शासनकालमें जंगल सुरक्षित रखे जाते थे और क़िलोंकी रक्षाके लिए पहाड़ोंपर

उनके आस पास जंगल रखे जाते थे। उनकी रक्षा-के लिए कड़े नियम बनाये गये थे।

झासीकी लड़ाईके बाद अंगरेजी शासन प्रारंभ हुआ। इसी समय कई बड़े बड़े जंगल नष्ट कर दिये गये। जमीनकी लगानकी आमदनीके लोभसे जंगल काट कर जमीन जोतनेके लिए तैयार की जाने लगी। उस जमानेमें जंगल रखना कृषिके लिए हानिकारक माना जाता था। और यही कारण है कि पहाड़ों परकी जमीन भी खेतीके लिए देदी गई। उसके अलावा रेल, सड़क आदिके लिए जंगल काटे गये। इस प्रकार अधिकांश जंगलोंके नष्ट हो जाने पर सरकारकी आँखें खुलीं और उसे जंगल सुरक्षित रखनेकी आवश्यकता भासित होने लगी।

माना कि जंगलोंसे लोगोंको कुछ तकलीफें होती हैं, फिर भी लाभ कम नहीं होता। लाभको देखकर कहना पड़ता है कि कष्ट सहकर भी लोगों-को जंगलकी रक्षा करनेमें सरकारकी मदद करना चाहिये।

भारतवर्षमें चार प्रकारके जंगल पाये जाते हैं-१ सदापत्री, २ गलितपत्री, ३ रूक्ष और ४ निर्जल।

उत्तर भारतके विस्तीर्ण मैदानके जंगल प्रथम वर्गके हैं। संयुक्त प्रान्त, विहार और बंगालमें इतनी अधिक जमीन जोत ली गई है कि वहाँ जंगलोंका अभाव सा है।

सदापत्री जंगल—इन जंगलोंके वृक्षोंके पत्ते बारहों महीने धीरे धीरे गिरा करते हैं। ऐसे वृक्ष पूर्व और पश्चिमी समुद्रतट पर पाये जाते हैं। पश्चिमी तटके अति वृष्टिके भागमें साग, शीशम आदि मूल्यवान झाड़ोंके सिवा ताड़ बाँस आदि भी पाये जाते हैं। पूर्वी समुद्र तट पर पानी कुछ कम बर-सता है। इसलिए यहाँके झाड़ कुछ छोटे होते हैं। इसी जंगलमें आबनूस होता है।

काश्मीर आदि हिमालयके जंगलोंमें ओक, देवदार, साल आदिके जंगल हैं।

निर्जल जंगल—सिंध, गुजरात, कच्छ, काठिया-वाड़, राजपूताना, दक्षिण पंजाब, पूर्व मैसूर आदि प्रान्तोंमें पानी कम बरसता है। इसलिए यहाँके जंगलोंमें उत्तम वर्गके झाड़ नहीं पाये जाते।

गलित पत्र—शेष अधिकाँश वृष्टि वाले प्रदेशोंके जंगल इस वर्गके हैं। यह जंगल बड़े महत्वके हैं। व्यापारी, सरकार, किसान, सभीको इन जंगलोंसे बहुत फायदा पहुँचता है। इनमें साग, चंदन, रक्त चन्दन, अंजन, हर्र, आँवला आदि अधिक होते हैं।

वृक्ष कहाँ लगाये जायँ?

वनस्पतिसे कितना फायदा पहुँचता है, यह बात ऊपर लिख आये हैं। अतएव प्रत्येक व्यक्तिका यह पवित्र कर्तव्य है कि वनस्पतिकी वृद्धिके लिए अहर्निश यत्न करे। आधुनिक कालमें जन-संख्याकी वृद्धिके कारण बड़े बड़े जंगल रख छोड़ना असंभव सा है; कारण कि बढ़ती हुई जनसंख्याके पोषणके लिए अधिक नाजकी जरूरत है। इस उद्देशकी पूर्तिके लिए अधिक भूमि पर खेती करना अनिवार्य्य है। इसलिए उसी जमीन पर वृक्ष लगाने चाहियें जो खेतीके योग्य न हों। नीचे लिखे हुए स्थानोंपर वृक्ष अवश्य ही लगाने चाहियें।

पहाड़ पर—सबसे पहले, पहाड़, पहाड़ी या ऊंचे टीलोंपर वृक्ष लगाये जाने चाहिये। पहाड़ोंपर वृक्ष लगानेसे जो लाभ होते हैं, उनपर गत परिच्छेदोंमें विचार कर आये हैं। पहाड़ी जमीन ढालू और पथरीली होनेसे उसपर खेती नहीं की जा सकती। इसलिए इस जमीनपर वृक्ष लगानेसे लाभ ही है।

नदी नाले, नहर, तालाब आदि के तट—इन स्थानोंपर भी झाड़ लगाने चाहियें। यहाँ वृक्ष लगानेसे प्रत्यक्ष लाभ यह होता है कि जड़ें जालकी तरह

फैलकर किनारेकी मट्टीको मजबूत पकड़ लेती हैं, जिससे मट्टी बह नहीं सकती। इन स्थानोंपर मूसला जड़ वाले झाड़ कदापि न लगाये जायँ।

खेतोंके आस पास—खेतोंके आस पास झाड़ लगानेसे फायदा इतना ही होता है कि पत्ते आदि-का खाद मिलता है; दूसरा लाभ यह है कि झाड़ों के कारण ओस भी ज्यादा पड़ती है; किसान और पशुओंको वृक्षकी छायामें आश्रय भी मिलता है। इन वृक्षोंसे इंधन भी मिलता रहेगा।

लोगोंको धारणा है कि खेतोंके पास झाड़ लगानेसे पक्षियोंसे फसलको नुकसान पहुँचता है। परन्तु ऐसा सोचना निराधार है, कारण कि खेतोंपर झुंडके झुंड पक्षी आकर बैठते हैं। यह पक्षी दूसरे स्थानोंसे एक खास मौसममें ही आते हैं। और शीघ्र ही दूसरी जगह चले जाते हैं। यह पक्षी किसी स्थानपर स्थायी रूपसे नहीं रहते। कुछ पक्षी वृक्षोंपर स्थायी रूपसे बस भी जाते हैं, परन्तु उनसे फसलको उतनी हानि नहीं पहुँचती। क्योंकि जब तक कीड़े मकोड़े मिलते रहेंगे, यह पक्षी फसलपर कदापि हमला नहीं करेंगे। यहां यह बात जरूर ध्यानमें रखनी चाहिये कि यदि किसी वस्तुसे नुकसान थोड़ा और फायदा ज्यादा

होता हो तो उसे लाभदायक ही समझना चाहिये। अकसर देखा जाता है कि खेतकी मेंड़पर उगे हुए वृक्षोंकी जड़ें जमीनमें फैलकर उसमेंका पोषक द्रव्य ग्रहण कर लेती हैं, जिससे फसल मारी जाती हैं। इस हानिसे बचनेके लिए खेतोंकी मेड़पर वही झाड़ बोये जाने चाहियें, जिनकी जड़ें जमीनमें बहुत गहरी जाती हों।

सड़क, रास्ते और रेलकी सड़कके किनारे—यहाँ झाड़ लगानेसे रास्ता चलने वालोंको छाया मिलती रहेगी और लकड़ी ईंधन वगैरा भी मिल सकेगा।

शहरों और गांवोंमें—यहाँ झाड़ लगानेसे बड़ा भारी फायदा यह होगा कि हवा शुद्ध रहेगी। इसलिए शहरोंमें जितने ही ज़्यादा झाड़ लगाये जायँ, उतना ही अच्छा है। हमारे हेल्थ आफीसर (Health-officer) अनेक खर्चीली स्कीमें बनाकर लाखों रुपया फूँक देते हैं; परन्तु इस सुलभ उपायकी ओर वह फूटी आँखसे भी नहीं देखते। झाड़ लगानेसे शहरों और गाँवोंकी शोभा बढ़ जायगी। कृत्रिम और प्राकृतिक शोभाके संयोगसे मनको अपूर्व आनंद मिलता है।

हर प्रकारकी परती जमीनमें—जो जमीन कृषि योग्य न हो वहाँ झाड़ लगानेसे उसका उपयोग हो जायगा।

वैज्ञानिक पुस्तकें

विज्ञान परिषद् ग्रन्थमाला

1. **विज्ञान प्रवेशिका भाग १**—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए., तथा प्रो० सालिग्राम, एम. एस-सी. ।)
2. **मिफताह-उल-फ़नून**—(वि० प्र० भाग १ का उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० सैयद मोहम्मद अली नामी, एम. ए. ... ... ।)
3. **ताप**—ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोषी, एम. ए. ।=)
4. **हरारत**—(तापका उर्दू भाषान्तर) अनु० प्रो० मेहदी हुसेन नासिरी, एम. एम. ... ।)
5. **विज्ञान प्रवेशिका भाग २**—ले० अध्यापक महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद १)

'विज्ञान' ग्रन्थमाला—प्रो० गोपाल स्वरूप भार्गव, एम. एस-सी. द्वारा सम्पादित

1. **पशुपक्षियोंका शृङ्गार रहस्य**—ले० अ० शालग्राम वर्मा, बी. एस-सी. ... -)
2. **ज़ीनत वहश व तयर**—अनु० प्रो० मेहदी-हुसैन नासिरी, एम. ए. ... ... -)
3. **केला**—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली -)

४ सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ।)

५ गुरुदेवके साथ यात्रा—ले० अध्या० महावीर प्रसाद, बी. एस-सी., एल. टी., विशारद ।≈)

६—शिक्षितोंका स्वास्थ्य व्यतिक्रम—ले० स्वर्गीय पं० गोपाल नारायण सेन सिंह, बी. ए., एल. टी. ... ... ।)

७—चुम्बक—ले० प्रो० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ... ... ≈)।

८—क्षयरोग—ले० डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी. बी. एस. ... -)

९—दियासलाई और फास्फोरस—ले० प्रो० रामदास गौड़, एम. ए. ... ... ≈)

१०—पैमाइश—ले० श्री० नन्दलालसिंह तथा मुरलीधर जी ... ... १)

११—कृत्रिम काष्ठ—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर पचौली ≈)

१२—आलू—ले० श्री० गङ्गाशङ्कर शङ्कर पचौली -)

१३—फसल के शत्रु—ले० श्री शङ्कर राव जोषी ।≈)

१४—ज्वर निदान और शुश्रूषा—ले० डा० बी० के मित्र-एल. एम. एस ... ।)

१५—हमारे शरीर की कथा—ले० " ... ≈)॥

१६—कपास और भारतवर्ष—ले० पं० तेज शङ्कर को चक, बी. ए. ... ... -)

१७—मनुष्य का आहार—ले० श्री० गोपीनाथ गुप्त वैद्य ... ... १)

१८—वर्षा और वनस्पति—ले० शङ्कर राव जोषी ।)

अन्य वैज्ञानिक पुस्तकें

हमारे शरीरकी रचना भाग १ ले० डा० त्रिलोकी नाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी. बी. एस. २॥।)

हमारे शरीरकी रचना भाग २—ले० डा०, त्रिलोकी नाथ वर्मा, बी. एस-सी., एम. बी. बी. एस. ... ... ४)

चिकित्सा-सोपान—ले० बी० के० मित्र, एल. एम. एस. ... ... १)

भारी भ्रम—ले० प्रो० रामदास गौड़ ... १।)

वैज्ञानिक अद्वैतवाद—ले० प्रो० रामदास गौड़ १॥।=)

वैज्ञानिक कोष— ... ... ४)

गृह-शिल्प— ... ... ॥)

खादका उपयोग— ... ... १)

—मैनेजर

विज्ञान पुस्तक भण्डार कटरा, प्रयाग

बाबू सूरज प्रसाद खन्नाके प्रबन्धसे हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयागमें छपा।